13

अंक : तेरह
मूल्य : सात रुपया
वार्षिक सहयोग : बीस रुपया

सृजन और शोध की प्रमुख त्रैमासिकी

मामुलिया

हे भवानी दादा,

धरती पर जब खड़े रहे लगते ऊँचे आकाश से
तम से हमें उठाया ऊपर अपने काव्य–प्रकाश से
तुमको आज न छू सकती हैं ये सारी ऊँचाइयाँ
कैसे श्रद्धांजलि दें, बोलो, बौने हाथ निराश से ।

हे बनारसी दादा,

मधुकर का संपादन कर तुमने चेतना जगा दी
बुंदेली संस्कृति–पराग की नूतन कली खिला दी
ब्रजभाषा से भी मीठी बुंदेली यह स्वीकारा
श्रद्धा–सुमन समर्पित, अंग्रेजी की नींव हिला दी ।

— *समस्त मामुनिया परिवार*

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त शताब्दी वर्ष के प्रारम्भ पर

हिन्दी के हित आए

• हरिवंश राय 'बच्चन'

मैथिलीशरण थे हिन्दी के हित आए ।
पड़ी हुई थी एक बालिका अनचाही, अनब्याही,
अल्प वयस की, देव विवश ही कवि-माता मर आई,
मिथिलापति मैथिली कण्व मुनि शकुन्तला को जैसे,
वैसे ही उसको गोद उठा घर लाए ।

तुतलाने वाली को क्रमशः गाना गीत सिखाया,
औ घुटनों चलनेवाली को नर्तन–कुशल बनाया,
आजीवन साधना उन्हीं की आज खड़ी बोली जो
युग, देश, प्रकृति, संस्कृति के साज सजाए ।

किसे छोड़ते हैं जीवन में कठिन समय के फेरे,
दुर्भाग्य का शाप इसे भी बहुत दिनों था घेरे,
कटा उन्हीं के तप से, अब यह भारत-भाषाओं में
पटरानी का अधिकारपूर्ण पद पाए ।

क्या न मिला उनसे, पाने की जो रक्खे यह आशा,
जग विख्यात, नहीं होती है मृषा देव–ऋषि भाषा,
अपना ब्रह्म जगा बस कह दें "मेरी यह मुंह बोली,
मुंहबोली सब जन–भारत की बन जाए । "
मैथिलीशरण थे हिन्दी के हित आए ॥

●

(राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ से साभार)

मामुलिया की विशेषांक-परम्परा में दो अमूल्य विशेषांक :

● मध्यदेशीय लोकसंस्कृति विशेषांक

मध्यदेश के जनपदों के विशिष्ट विद्वानों– डा० भगीरथ मिश्र, डा० विद्याबिन्दु सिंह, रामनारायण अग्रवाल, रमेश तिवारी, डा० भगवती प्रसाद शुक्ल, डा० कांति कुमार जैन, डा० बलभद्र तिवारी, डा० आशा खरे, महेश कुमार मिश्र 'मधुकर', डा० महेन्द्र वर्मा, डा० गनेशीलाल बुधौलिया, डा० वीरेन्द्र 'निर्झर' आदि के साथ श्रीमती कपिला वात्स्यायन और श्री श्यामाचरण दुबे के विशेष लेख.

● राष्ट्रकवि विशेषांक

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शताब्दी वर्ष पर उनके परिवार, स्नेही और अन्य विशिष्ट जनों के संस्मरण; दुर्लभ पत्र एवं चित्र; व्यक्तिगत जीवन को रेखांकित करने वाली विशिष्ट आयोजना; अप्रकाशित वार्ताओं एवं निबंधों की बानगी तथा गद्य-शैली का विवेचन; काव्य-सम्पदा का शोधपूर्ण मूल्यांकन; भारतीय और आंचलिक संस्कृति में योगदान आदि विषयों पर अनूठी सामग्री.

□ विशेषांकों की प्रतियाँ सीमित हैं, सुरक्षित कराने का कष्ट करें.

□ विज्ञापनदाता शीघ्र सम्पर्क करें.

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर– ४७१००१, म० प्र०

मामुलिया

वर्ष ४, अंक १३

लेख/संस्मरण

कहानी/लोककथा

कविताएं/व्यंग्य

सम्मानित कवि/कविताएं

स्तम्भ

मुखपृष्ठ का चित्र : कंगारू/ ठाकुर हरनारायण सिंह, अजयगढ़, जिला पन्ना की मृणमूर्ति

मामुलिया

सम्पादक

डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

सहायक सम्पादक

डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

सम्पादन सहयोग

डा० बलभद्र तिवारी, डा० कृष्णकुमार हूंका, डा० हरिसिंह घोष, वीरेन्द्र शर्मा कौशिक, सुरेन्द्र शर्मा, आशाराम त्रिपाठी

सम्पर्क

सम्पादकीय : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुक्लाना, छतरपुर, म० प्र०

व्यवस्थापकीय : बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर, म० प्र०

- पत्रिका का सहयोग : २० रुपया वार्षिक, संस्थाओं के लिये २५ रु० २०० रुपया आजीवन
- अकादमी का सहयोग : ५०० रुपया आजीवन, १००० रुपया संरक्षक
- पत्रिका की विज्ञापन दरें : पृष्ठ कवर अंतिम, १००० रुपया
  पृष्ठ कवर द्वितीय, ८०० रुपया
  पृष्ठ कवर तृतीय, ६०० रुपया
  सादा पूरा पृष्ठ, ५०० रुपया
  सादा आधा पृष्ठ, ३०० रुपया
  सादा चौथाई पृष्ठ, २०० रुपया

- पत्रिका के पुराने अंक उपलब्ध हैं, अग्रिम धनराशि भेजकर सुरक्षित करा लें।

- मुद्रक– प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस, छतरपुर

अपने मन मानिक के लानें
मुगर जौहरी चानें

• त्रासदियों के घेरे और श्रद्धांजलियों की औपचारिकताएं

भोपाल की गैस त्रासदी, पंजाब और दिल्ली की सामूहिक हत्यायें प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा जी की हत्या, हिटलिस्ट के चुने हुए नाम और साम्प्रदायिक दुश्मनी के उबाल नाना प्रकार की त्रासदियों के घेरे समूची मानवता को फंसाने के लिए किलेबन्दी करने पर उतारू हैं और हम मात्र श्रद्धांजलियों की औपचारिकतायें निभाते हाथ बांधे दूर खड़े हैं। लोग सहज रूप में कह देते हैं कि क्या करें, सब राजनीति है, सत्ता को कुछ करना चाहिए, नेताओं की कूटनीति ही सारा खेल बिगाड़ती है। साहित्यकार, कवि और लेखक, त्रासदियों के शिकार देखकर करुणा से भर जाता है और शोक गीतों के कुण्डों में परब-स्नान करने की गुहार लगाता है। लेकिन इस सब से होगा क्या ? उद्वेग या भावना के मार्गीकरण का इकलौता मनोवैज्ञानिक तर्क भी अब भोथला हो गया है। फिर साहित्यकार क्या करें ? अब तो सिर्फ मानवता के दुश्मनों के खिलाफ एक जेहाद छेड़ने की जरूरत है और उसके लिए साहित्यकारों का एक सुसंगठित मोर्चा बनना चाहिए। सारे भेदभाव और पक्षपातों के खोल हटाकर। जन-जन में सही चेतना भर कर। और यह काम वही कर सकता है जो सच्ची लोकानुभूति को लोकभिव्यक्ति दे सकें। वही सच्चा लोककवि या लोक साहित्यकार होगा।

• साहित्य और प्रजातंत्र के रिश्ते और समझ के बदलते दायरे

विश्व के अनेक राजतंत्रों को तराजू के पलड़ों पर रखने से यह स्पष्ट है कि भारत जैसे अनेक भाषाओं, संस्कृतियों, धर्मों आदि कई भिन्नताओं वाले देश के लिए प्रजातंत्र एक आवश्यकता है, क्योंकि उसमें सभी का प्रतिनिधित्व आसानी से हो जाता है। प्रजातंत्र की सफलता तभी संभव है, जब देश के हर व्यक्ति में जनतांत्रिक मानसिकता हो और ऐसे प्रजातांत्रिक मन या चेतना के विकास की सबसे ज्यादा जिम्मेदारी साहित्य की है। इस दृष्टि से साहित्य का दायित्व बहुत बढ़ जाता है, परन्तु प्रजातंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्ति की गरिमा की रक्षा का मतलब है– एक मानसिक आजादी जिसमें साहित्य एवं साहित्यकार की आजादी और गरिमा दोनों शामिल हैं। इस रूप में प्रजातंत्र की जिम्मेदारी कम नहीं है। जहां तक साहित्य की आजादी का प्रश्न है, यह

निश्चित ही गर्व की बात है कि इस देश में किसी भी तरह के सृजन पर कोई बंदिश नहीं है। यहां तक कि अश्लील और असामाजिक साहित्य भी खुले आम बिकता है और सत्ता वर्ग के खिलाफ लिखी गयी रचनायें खुले मंचों पर सुनाई जाती हैं। लेकिन मुश्किल तो यह है कि साहित्यकार की अभिव्यक्ति को कोई महत्व नहीं दिया जाता। यह मान लिया जाता है कि साहित्यकार का क्षेत्र केवल साहित्यिक है और उसे समाज या देश के मसलों से कोई सरोकार नहीं और अगर वह रखता भी है, तो उसकी आवाज सुनी नहीं जाती। ऐसा लगता है कि साहित्य का अर्थ हमने इतना बदल दिया है कि वह सिर्फ मनबहलाव की वस्तु बन गया है। जिस साहित्य या साहित्यकार की कोई गरिमा न हो, उसकी आजादी या गुलामी से क्या फर्क पड़ता है। इसलिए मूल समस्या साहित्य की वास्तविक प्रतिष्ठा को कायम करना है और वह भी तब तक संभव नहीं है, जब तक साहित्य कुछ करके न दिखाएं।

दूसरी तरफ, साहित्य प्रकृति से ही प्रजातांत्रिक है। सृजन से लेकर आस्वाद तक की उसकी यात्रा प्रजातांत्रिक राजमार्ग पर होती है। साहित्य का शरीर ही नहीं, मन भी वैयक्तिक रागद्वेषों से मुक्त होकर सबका हो जाता है। साधारणीकरण की विशिष्ट प्रक्रिया जब वैयक्तिक पक्षपातों को निरस्त कर देती है। तब साहित्य लोक के हितों से जुड़ जाता है। साहित्य की रचना या प्रेषणीयता में जाति, वर्ग, धर्म आदि के भेदभाव का कोई बंधन नहीं है। ऐसे जनतंत्री साहित्य की भी यदि किसी जनतंत्र में कोई विशेष पूछ न हो, तो फिर किसका दोष है ?

और गहराई पर जाया जाय, तो कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनसे ऐसा लगता है कि व्यावहारिक रूप में हमारा साहित्य सबके साथ उतनी समानता का दावा नहीं कर सकता। हमारा साहित्येतिहास राजा-महाराजा साहित्यकारों का इतिहास है, उसमें लोक साहित्य के रचनाकारों को तो कोई स्थान नहीं दिया गया। इस कारण साहित्य का जनतंत्र कुछ अधूरा-सा रह जाता है। जहां प्रतिबद्ध या आग्रही दृष्टियों का प्रश्न है, वहां यह बिल्कुल निश्चित है कि जनतंत्र में विभिन्न दृष्टियां और विचार होते हैं और उनमें द्वंद्वमूलक स्थितियां स्वाभाविक हैं। अगर किसी का तेवर ज्यादा तंग और कट्टर हो, तो उसे भी सहन करना पड़ता है। पर इतनी सजगता के साथ कि जनतंत्र का खोल ओढ़कर कोई भेड़िया न घुस आए।

समीक्षा भी उसी तरह जनतांत्रिक है, जिस तरह साहित्य। उसका प्रजातंत्र हमारे लिए नया नहीं है, यह बात अलग है कि आधुनिक आलोचक नये ताने-बाने बुन-कर उसे नये रूप में उपस्थित करने की कोशिश करें। आलोचना की किसी एक पद्धति को तो कट्टर, संकीर्ण, साम्प्रदायिक और आग्रही कहा जा सकता है, पर आलोचना को ही साम्प्रदायिक मान लेना कहां तक उचित है। आलोचना को 'ठहरी हुई और

असहिष्णु तथा कविता को विविध छवियों में जगमगाती' बताने का क्या अभिप्राय हो सकता है ? केवल यह कि आलोचक कवि नयी कविता-धारा की रक्षा में आलोचना पर ऐसे आक्रामक तेवर दिखाता है। कुछ भी हो, जनतंत्र की कसौटी पर जो खरा नहीं उतरेगा, वह अपने आप झर जायेगा। शिविरधर्मिता जनतंत्र के लिए एक बड़ा खतरा है, क्योंकि शिविरविहीन अल्पसंख्यकों का उसमें कोई सहारा नहीं बचता। इस वजह से स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की भावना हर जनतंत्र में अनिवार्य है, चाहे वह सृजन का हो या आलोचन का।

इन बिन्दुओं के रेखांकन से साहित्य और प्रजातन्त्र के रिश्तों की एक तटस्थ तस्वीर उभरती है और यह सिद्ध हो जाता है कि हर साहित्यकार को अपने सामने जनतंत्र का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप रखना जरूरी है। अभी बहस के दौरान कुछ विचार सामने आए हैं। एक यह है कि जैसा हमारा जनतंत्र है, वैसा ही साहित्य का जनतंत्र। 'मूल्यों के अपसरण और प्रदूषण से रचा हुआ'। यह ठीक है, पर हमेशा के लिए ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं बन सकता। कुछ विद्वान साहित्य के जनतंत्र के लिए अर्थों या विचारों के जनतंत्र का समर्थन करते हैं, लेकिन मेरी समझ में समस्या की जड़ हमारे मूल्य ही हैं। मूल्यों का प्रजातंत्र ही साहित्य के प्रजातंत्र का आधार है। मूल्य अनेक हैं— आन्तर और बाह्य, कला और जीवन के, रोमांसिक और प्रगतिशील आदि, और यह भी सच है कि उनमें टकराव होता रहता है और होना भी चाहिए। बिना द्वन्द्व के गति नहीं होती। लेकिन टकराव और द्वन्द्व जो भी हों, प्रजातांत्रिक भावना से हों, प्रजातांत्रिक पद्धति का ध्यान रखते हुए। केवल इसी में साहित्य का प्रजातंत्र सुरक्षित रह सकता है।

• वासंती बहार से लेकर रिसती हुई तपन तक

फिर वसन्त आया, फिर होलिका-दहन और फिर सूरज की गागर से रिसती हुई तपन तक का एक फागुनी माहौल। लेकिन इन सबसे लोक की भावना नहीं जुड़ी, आखिर क्यों ? क्या इसलिए कि वसंत वसंत नहीं रह गया, फाग फाग नहीं और धरती की ग्वालिन सूरज की गागर रखे हुए भी गगन-कन्हैया को नहीं रिझा सकी। ऐसी बात नहीं है। बात यह है कि भावना पर बुद्धि हावी हो गयी है और इस कारण वह सिकुड़ कर आत्मकेन्द्रित हो गई है। अपने भाई-भतीजे तक भी नहीं, वरन् पत्नी-पुत्र तक सीमित और आश्चर्य नहीं कि वह खुद के परिवार से हटकर सिर्फ खुद तक ही संकुचित हो जाय। इस संकुचन की बढ़ती यात्रा रोकने के लिए जरूरी है फिर लोकोत्सव मनाना, मदनोत्सव, फाग आदि की तैयारी। फिर एक बार उल्लास की बयार, आस्था की कोकिल, भावों के रंग-बिरंगे सुमन और कंदर्प की पूजा। काम सौंदर्य है, ऊर्जा है,

शर्त यह है कि उसकी पवित्रता में आंच न आए। काम की ऊर्जा समाज और राष्ट्र की ऊर्जा बने। आओ फिर वसन्तोत्सव मनाएं, फाग रचें और रिसती हुई तपन में उल्लास को तपाकर घर-घर फैलाएं।

● शिखर सम्मान की भीड़ में लोकसाहित्य की उपेक्षा

साहित्य और कला की श्रेष्ठता के लिए मध्यप्रदेश शासन द्वारा शिखर सम्मान के पुरस्कारों की स्थापना निश्चित ही प्रशंसनीय है। लेकिन उसमें अन्य क्षेत्रों के साथ लोककला को तो शामिल किया गया है, लोकसाहित्य को छोड़ दिया गया है। क्या साहित्य, शास्त्रीय कला और लोक कला के साथ लोकसाहित्य का दर्जा बराबरी का नहीं है? क्या लोकानुभूतियों को व्यक्त करने वाला अथवा लोककविता, लोककथाओं लोककलाओं पर मूल्यवान विवेचन प्रस्तुत करने वाला लोकसाहित्य इतने महत्व का नहीं है? कम से कम इस दौर में जब अतिबौद्धिकता, विज्ञान और आर्थिक विषमताओं की तपन से लोकभावों के जलाशय सूख रहे हों, तब उनकी सरसता का दावा करने वाला लोकसाहित्य ही है। फिर लोकसाहित्य बहुसंख्यक गांवों की जनता का साहित्य है, अतएव उसकी उपेक्षा लोक की उपेक्षा है। शासन को इस तरफ ध्यान देना जरूरी है।

● बेड़िनियों के सुधार का प्रयासः कुछ प्रतिक्रियाएं

अभी हाल में कुछ अखबारों की सूचनाओं से ऐसा लगा था कि लोकनर्तकियां बेड़िनीं सागर जिले के पथरिया ग्राम में एकत्रित होकर अपने हितों का लेखा-जोखा कर रही हैं और समाजसुधारक चम्पादेवी के नेतृत्व में अपने सुधार का सामूहिक कदम उठा रहीं हैं। लेकिन बिजावर की लोकनर्तकियों ने साक्षात्कार के दौरान अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करते हुए कहा है– चम्पादेवी जी कहती हैं कि गाना-बजाना और नाचना छोड़ दो, हम सब छोड़ दें, तो क्या करेंगे। भूखे मरने की नौबत आ जाएगी। आप ही बताएं कि गीत और नृत्य जैसी कलाएं जानने वाली हम क्या बीड़ी बनाना सीखें।' जब उससे कहा गया कि गाना और नाचना तो ललित कलाएं हैं, उनसे तो कलाकार की प्रतिष्ठा बढ़ती है, तब उनके मुख स्वाभिमान की ललाई से जगमगा उठे। लेकिन फूस की बुझती चिनगियों की तरह उन सबके स्याह पड़ते चेहरे फुसफुसाए 'हमें कौन पूछता है, समाज में हमारी क्या इज्जत है।' सम्मान और प्रतिष्ठा न होने की समस्या पर विचार करते हुए जब उनसे वेश्यावृत्ति त्यागने को समझाया गया, तो वे कुछ देर तक मौन रहीं, फिर उनकी प्रतिक्रियाएं अलग-अलग थीं। सारांश यही था कि धन्धा उनकी मजबूरी है। उनमें से एक ने बहुत निश्छल होकर कह दिया– 'अगर धन्धा छोड़ दें, तो क्या आप जैसे पढ़ेलिखे हमारा नाच-गाना पसंद करेंगे?'

दरअसल लोकनर्तकी बेड़िनियां समाज में अपनी प्रतिष्ठा के लिए आतुर तो हैं,

लेकिन अपनी कला के सम्मानित न होने से उन्हें अपने सामने अंधेरा ही अंधेरा दिखाई पड़ता है। अगर उनकी कला का उचित सम्मान होने लगे और उन्हें उनके बदले में उचित पारिश्रमिक भी मिलने लगे, तो निश्चित ही उनमें सुधार होगा। और लोक कला भी विकास पाएगी। नाच-गाना छोड़कर बीड़ी या अन्य किसी धन्धे में लगने से लोककला के लिए एक खतरा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। समाज और शासन को इन लोककलाकारों के लिए गंभीरता से सोचना चाहिए।

● भवानी दादा चले गए : छूंछी श्रद्धांजलियों का एक दौर

भवानीदादा [भवानीप्रसाद मिश्र] चले गये और हम छूंछी श्रद्धांजलि लिये खड़े रह गए आंखों में दो चार–आंसू और हृदय में एक करुण अनुभूति। हम कुछ भी तो नहीं कर सके, यहां तक कि करने का संकल्प तक नहीं ले सके। बुंदेली धरती के गौरव सियारामशरण गुप्त, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा, और फिर भवानीप्रसाद मिश्र ....धीरे–धीरे हर स्तम्भ ढह गया, पर हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। चेतनाशून्य जैसे मौन। आखिर हमारा भी कुछ कर्तव्य था हमारी भी कुछ जिम्मेदारी थी। कम से कम उन लोगों के लिये, जिन्होंने हमें जिन्दगी भर दिया और बदले में कुछ नहीं चाहा। अब तो स्पन्दन फूटे, चेतना जगे और हम क्रियाशीलता की तरफ बढ़ें। 'मामुलिया' आपके साथ कदम मिलाकर चलेगी। अपनी क्षमता और शक्ति भर। उसके नैन भरे-भरे हैं, मन डूबा–डूबा है, पर हाथ मचल–मचल कर कह रहे हैं कि वह करेगी....अवश्य करेगी....।

● संकल्पों की कसौटी पर चढ़ा चौथा वर्ष

'मामुलिया की बारह अंकों की यात्रा के बाद अंधेरों की परतें धीरे-धीरे टूट रहीं हैं और नई दिशाएं खुलने लगीं हैं। बुन्देलखण्ड के इतिहास, पुरातत्व, साहित्य और कला पर हमने जो भी शोधपरक सामग्री दी है, फाग-काव्य, आल्हखण्ड और ईसुरी पर जो विशेषांक प्रकाशित किये हैं, उनकी लोकप्रियता इस बात से सिद्ध है कि 'मामुलिया' बहुचर्चित है और बुंदेलखण्ड के बाहर भी उसकी साख है। इसके बावजूद अपनी आर्थिक परिस्थितियों से जूझती हुई भी वह अपने संकल्पों के प्रति एकनिष्ठ है। उसका लक्ष्य स्पष्ट है और वह है– लोक की अभिव्यक्ति, लोक के हित में लोक के लिए। एक साफ-सुथरे जागरूक लोक को प्रतिष्ठित करने के लिए। इस संकल्प को दुहराते हुए हम चौथे वर्ष में बढ़कर सभी सहयोगियों का अभिनन्दन करते हैं। साहित्यकारों, संस्थाओं, पाठकों और साथियों का। और खासतौर से इस धरती का, जो एक नयी अंगड़ाई के लिए तैयार हो रही है।

— नर्मदा प्रसाद गुप्त

●

त्रासदी...त्रासदी...त्रासदी/तीन तेवर

इन्दिरा गांधी की हत्या पर

अब बदलना ही पड़ेगा शान्ति का इतिहास / कान्ति करै

अब बदलना ही पड़ेगा शान्ति का इतिहास ।
इस तरह से जब कलंकित हो उठा विश्वास ॥

पुतलियां जो आंख की रक्षा को हैं तैनात
आज वे ही कर उठीं क्यों कणिका से घात
तोड़कर सब खा गया है वृक्ष अपने पात
धड़कनों ने ही हृदय पर कर दिया आघात
अब कहां धरती रहेगी कहां पर आकाश ॥

ढाल ही जब बन गई हो खुद ब खुद तलवार
दीप घर का ही जला कर फूंकता घर-द्वार
आस्तीनों से निकलती सर्प की फूत्कार
लूट कर भंडार घर का चला पहरेदार
कर उठी है मंथरा फिर अयोध्या का नाश ॥

सिर झुकाकर रह गया है आज वहशीपन
मानवों के तन बदन में दानवों का मन
दानवों ने हार मानी जा छिपे निर्जन
देख कर के मानवों का आज नंगापन
मिल गया कैलाश पर अहिरावणों को वास ॥

कर चले अन्याय जब निर्द्वन्द्व अत्याचार
कुछ न समझौता करे अधिकार बस अधिकार
फिर न क्यों अनिवार्य हो यह हार नर-संहार
शत्रुहीन करें धरा को एकविंशति बार
ले चलो तुम अब हमें उस परशुधर के पास ॥

धर्म या ईमान-रक्षक का हुआ नीलाम
बिक गया विश्वास अब तो कौड़ियों के दाम
प्यार, करुणा, शान्ति के संदेश के आयाम
अर्चनायें साधनायें सब हुए बदनाम
बच रही है बस दगा ही आदमी के पास ॥

—• नजर बाग, छतरपुर म० प्र०

भोपाल की गैस त्रासदी पर आधारित

त्रासदी : यक्ष प्रश्न

• प्रह्लाद तिवारी

पक्षी के डैनों पर नींद को लादकर,
रात नसों में काफी भीतर तक घुसती है—
धूम्रगान कोहरा उसे तरल बनाता है,
अनभिज्ञता के साथ वह बढ़ रही है;
रात के अंतिम प्रहर में अचानक हवा का रंग बदलता है
जिसे चिमनियों ने उगल दिया है
शहर के चौराहे के बीच बिजूखे की शक्ल में खूनसनी रस्सी से
एक काली छाया उतरती है
आतंक जब खून के नजदीक से गुजरता है उसका रंग क्यों नहीं होता ?
तेज गंध नसों पर, त्वचा पर और आंखों पर ठहर जाती है
गले में कुछ अटकता है (खांसी हो सकती है ?)
हथौड़े के वार से आदमी, औरतें और बच्चे सिमट जाते हैं
छायाकृति अभी भी उतर रही है कच्ची दीवारों पर
बेजान फुटपाथों पर
एक कीड़ा बिलाबिलाकर पानी पर तैरने लगता है
आतंक नसों के बजाय आंखों पर बुनता है अंतहीन सन्नाटा
मकड़ी के जालों में काला जंगल घिर आया है
सख्त खूनी पंजे तारपोलीन की छतों और खपरैल के मकानों पर
क्यों फैल जाते हैं ?
शहर शब्दहीन यात्राओं की तरह चौराहे की शक्ल में बदलने लगता है
बुखार संस्थान का अनुत्पादक अंग बनाकर वह इतिहास को
काले धब्बे में बदलने लगता है
नींद और सुरक्षा से जुड़े हाथों में जंग क्यों लगती है ?
अश्वमेध के घोड़े पहियों के क्षतिग्रस्त होने के बावजूद क्यों दौड़ते हैं ?
श्मसान में / कब्रस्तान में जमीन के भीतर से चीखें उभरती हैं
शब्दों के स्तर पर कोई आयोजना है ?
मुझे सारे प्रश्नों के उत्तर चाहिए, फिलहाल मैं सोना चाहता हूं ।

— ११८, रूपराम नगर कालोनी, इन्दौर

हिंसक घटनाओं पर आधारित

हम कुछ नहीं कर सकते फिलहाल / लीलाधर मंडलोई

नावाकिफ नहीं हैं वे
हमारी फितरत से ।
दरकिनार करते हमारी धारणाएं
वे आते हैं हर बार
और तहस-नहस करते
हमारी व्यवस्था और जीवन
लौट जाते हैं / सनसनी फैलाते
समुद्र और हवाओं के रास्ते ।
सिर्फ उनका पालतू दरिंदा
घूमता रहता है रात भर
घटनाएं आग की तरह फैलती हैं
और हाकिम आदतन चुप
आवाजों का सख्त पथरीला चेहरा
एक क्षण को उभरता है विरोधी खेमों से
और हो जाता है निश्चेत ।
देश वार्तों को
किसी दुःस्वप्न की मानिंद
भूलता हो जाता है सक्रिय / खेलों में
ठीक इसी वक्त की फिराक में
होते हैं रेडियो और टेलिविजन
वे भरना शुरू कर देते हैं मैदानों का खालीपन
सक्रियता के निस्सार बोध से
नावाकिफ नहीं हैं वे हमारी फितरत से ।
हम संभवतः भूल सकते हैं
सब—
जलता हुआ परिवेश, मांस की गंध
और कटे हुए हाथ,
वे निश्चित हैं कि
हम कुछ नहीं कर सकते
फिलहाल···· ।

— आकाशवाणी, जबलपुर

एक और दिमागी त्रासदी

हो गयो खेत उजार...

● स्व० किशोरीलाल अग्रवाल 'लल्ला'

मैं दई सों गई हार, तरइयां रीत चलीं ।
कैसो जो सिंसार, बिथायें खूब पलीं ॥

किये पती तो दुख जो परहै
बिना तेल के बाती बरहै
अबा बनो सो भीतर-भीतर
धुआं बिना बारो मन जर है
जीवन हो गओ भार, तरइयां रीत चलीं ।

इन अंखियन ना कजरा भर है
रो रो मालन ऊपर झर है
भुनसारे सों उठ कें सइयां
रूप कौन के मन कों हर है
बिथा भओ सिंगार, तरइयां रीत चलीं ।

बीज बोयते मन में अपने
अंकुर फूट लगे ते दिपने
बारो मन, बोराय रई ती
तरां तरां के रच कें सपने
उनपै परो तुषार, तरइयां रीत चलीं !

हरी भरी बगिया मुस्काई
खड़ी खेत सरसों लहराई
ऐसे में ना जानै कौनै
आकें चुपकें आग लगाई

हो गयो खेत उजार, तरइयां रीत चलीं ।
कैसो जो सिंसार बिथायें खूब पलीं ॥

●

— हटवारा, छतरपुर, म० प्र०

जन्म दिन पर स्मरण—

सरस्वती राजनेता को कभी प्रणाम नहीं करती — महादेवी

● वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

लगभग दो वर्ष पूर्व की ही तो बात है। हम लोग इलाहाबाद में कालिया दम्पत्ति के निवास पर हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री आधुनिक मीरा श्रीमती महादेवी वर्मा को मिले ज्ञानपीठ पुरस्कार पर चर्चा कर रहे थे, तभी मेरे मन में विचार आया कि क्यों न अपने इस प्रवास में बुआजी (श्रीमती महादेवी वर्मा) के दर्शन लाभ से उपकृत हो लूं। हम बुन्देलखण्ड वासी उन्हें बुआजी इसलिए कहते हैं कि वे हमारे दद्दा (पिता को दद्दा कहा जाता है) स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त की राखीबंध बहिन थी। मैंने कालिया जी के यहां से फोन पर उनसे मिलने का समय लिया और निर्धारित समय से आधा घण्टा लेट हो जाने पर भी दूसरे दिन जब हम बंधुद्वय डा० नर्मदाप्रसाद गुप्त और वीरेन्द्र निर्झर के साथ बुआ जी के घर पहुंचे, तो जिस अपनत्व व प्यार भरे ममत्व के साथ वे मिलीं उसे कभी भी भुलाया न जा सकेगा। दो-ढाई घण्टे की इस भेंट में अपनी अस्वस्थता की चिन्ता किए बिना वे बड़ी ही आत्मीयता के साथ विविध प्रश्नों पर ऐसे बतयाती रहीं जैसे कोई मां अपने बेटों की जिज्ञासाओं का शमन कर रहीं हों।

हिन्दी का सर्वोच्च सम्मान (लगभग डेढ़ लाख रुपये का) ज्ञानपीठ पुरस्कार महादेवी जी के नाम जब घोषित किया गया था तभी से साहित्य जगत में विभिन्न चर्चायें हो रहीं थीं कि यह पुरस्कार उन्हें बहुत देर से मिला है। ब्रिटिश प्रधान मंत्री श्रीमती मारगरेट थैचर के हाथों उन्हें यह पुरस्कार नही लेना चाहिए और यह कि उन्हें देश में 'इमरजेंसी लगाने वाले हाथों' (श्रीमती इन्दिरा गांधी) से उत्तर प्रदेश का 'भारत-भारती' पुरस्कार भी नहीं लेना चाहिए था। ये सभी प्रश्न मेरे जहन में उमड़-घुमड़ रहे थे, जिनकी चर्चा जब बुआजी से मैंने की तो वे बहुत ही आत्मीयता व अंतरंगता के साथ मेरे मीठे तीखे सभी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर सहज-स्वाभाविक मूड में देती रहीं। महादेवी जी करुणा और मानवीय संवेदना की एक ऐसी कवयित्री हैं, जिनका व्यक्तित्व जीवन की तीव्रगामी जल धारा को अपनी अनूठी शैली में काटकर आगे बढ़ता रहा है। उनके कृतित्व का कहना ही क्या है, जिसके सामने 'भारत-भारती' और ज्ञानपीठ पुरस्कार भी नत् मस्तक हो श्रद्धा से झुक गये हैं। ये पुरस्कार महादेवी जी के पास जाकर स्वयं ही गौरवान्वित हो गए। उनके गीत तथा रेखाचित्र हिन्दी के ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण विश्व-साहित्य की अनूठी थाती बन गए हैं। साहित्य हो या राजनीति - निरंकुश व्यवहार और रवैयों का महादेवी जी ने हमेशा विरोध किया है। कुछ ऐसे ही मिले-जुले सवाल उनके सुदर्शन व्यक्तित्व की शीतल छाया में बैठकर मैं उस दिन पूंछ सका था :—

प्रश्न— प्राय: देखा जा रहा है कि आज देश का साहित्यकार भी सत्य कहने में हिचक रहा है– विशेषत: आपातकाल में तो जैसे उसकी घिग्घी ही बंध गई थी। आप क्या कहना चाहेंगी।

उत्तर— बिल्कुल ठीक कहा तुमने। साहित्यकार सत्य से विमुख हो गया है। आपातकाल में अकेली मैं ही बोलती रही, कोई नहीं बोला, पर मैं यह कहे बिना भी न रहूंगी कि इन्दिरा जी ने भी मुझे खूब माना। हमेशा मानती रहीं। हर बात मानती हैं। मुझे उस समय भी कभी कष्ट नहीं दिया। डा० रघुवंश और इलाचन्द्र जोशी को मेरे कहने पर सहायता भी दी। पर मैं कभी उसके द्वार पर खड़े होकर प्रणाम नहीं करूंगी। राजनेता को सरस्वती कभी प्रणाम नहीं करती। भारतीय आत्मा (स्व० माखन लाल चतुर्वेदी) ने जवाहरलाल जी से मंत्री पद अस्वीकारते हुए कहा था– "वृहस्पति का आसन पाकर मैं अब इन्द्रासन कभी नहीं ले सकता।"

प्रश्न— आज की कविता ?

उत्तर— आज की कविता, क्या कविता ! जीवन का छन्द हीं टूट गया, तो कविता का छन्द भी टूट गया। जो बात हम कह दें, वही तो कविता नहीं हो जाती। लेकिन रास्ता मिलेगा ही। सरस्वती अपना मार्ग बनाएगी ही। हम निराश नहीं हैं। तुलसी चार सौ वर्ष बाद भी हमारे स्पन्दन में विचरण कर रहा है। ऐसे कवि और कविता आज है कहां। वे साधक थे। साधना की थी उन्होंने। वे जी रहे हैं, जियेंगे भी। आज तो कवि काफी हाऊस में बैठकर शराब पी रहे हैं। क्या वे कवि हो सकते हैं ? कभी नहीं।

प्रश्न— आपके आदर्श ?

उत्तर— कुछ हैं, जो मैं हमेशा अपनाए हुए हूं। सत्य, अहिंसा, निष्ठा, तप, साधना क्षमा। भगवान को लोग भूल रहे हैं। हमारे धर्म में जो आस्था का भाव है, वह अन्य धर्मों में नहीं। हमने धर्मनिर्पेक्षता को अपनाया है, तो हम धर्म ही छोड़ दें, कहां तक उचित हैं ? आज की पीढ़ी श्रम को भूल गई है। लूट डकैती द्वारा छोटे-छोटे बच्चों बिना श्रम किए कमाना चाहते हैं। वे दुराचारी हो रहे हैं। दुस्साहस द्वारा लूटमार से आसानी से पा लेते हैं, तो श्रम की जरूरत कहां रही ? मनुष्य भेड़िया हो गया है। दहेज-हत्यायें की जा रहीं हैं। न जाने कितने नीचे गिरता जा रहा है मनुष्य ? पूरा राष्ट्र पतन की ओर जा रहा है। क्या होगा कहां रह गए हमारे आदर्श ? कहां गए हमारे प्राचीन भारतीय संस्कार ? क्या कहूं ? बिना सोचे, बिना लिखे, बिना कहे कैसे रहूं ?

प्रश्न— भारतीय भाषाओं का सर्वोच्च पुरस्कार– 'ज्ञानपीठ' ब्रिटिश प्रधान मंत्री श्रीमती मारगरेट थैचर से लेते हुए आप कैसा महसूस करती हैं ?

उत्तर— राजनीतिज्ञों से हमें क्या लेना - देना ! गांधी जी तो हैं नहीं । उन्होंने ही मुझे मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया था । अब किसके और कहां हैं वैसे हाथ ?

प्रश्न— 'ज्ञानपीठ' आपको बहुत देर से नहीं मिला है क्या ?

उत्तर— इस सम्बन्ध में हमने कुछ विचार ही नहीं किया । हमें तो आश्चर्य इस बात का ही हुआ कि उन्होंने नियम-भंग कर ऐसा किया ही क्यों ?

प्रश्न— हाल ही में आपने उत्तर प्रदेश का 'भारत-भारती' पुरस्कार श्रीमती इन्दिरा गांधी (इमरजेंसी की प्रतीक) के हाथों से लिया था जिसके बारे में आपका ही कहा बयान था कि आप ऐसे हाथों से कोई पुरस्कार न लेंगीं, फिर भी आपने लिया, जिसके विरोध में इलाहाबाद तथा अन्यत्र के साहित्यकारों ने आवाज उठाई थी, आप क्या कहना चाहेंगी ?

उत्तर— किसी साहित्यकार या कलाकार की महत्ता या मूल्य किसी पुरस्कार को पाने या न पाने से नहीं बढ़ता और न उससे घटता ही है । पुरस्कार राशि मुझे साहित्य सहकार न्यास को देनी थी, जिससे हाथों के सरोकार का कोई सवाल ही नहीं उठता । मैं पहले ही कह आई हूं कि एक पुरस्कार मुझे बापू जी के हाथों मिला था । वे हाथ अब कहां ? हाथों वाली बात राजनीति - प्रेरित लगती है । मैंने ऐसा तो कभी कुछ कहा नहीं । अखबार वाले कुछ का कुछ लिख देते हैं । जहां तक इलाहाबाद के लेखकों या साहित्यकारों की बात है, वे सब मुझसे उम्र में बहुत छोटे हैं, अनुज समान हैं , क्षम्य हैं, पर इतना जरूर कहूंगी कि आज की छोटी पीढ़ी एक दूसरे की बुराई में ही जीवन देख रही है । हिन्दी की सबसे बड़ी कमी यही है कि हम जितना भवन बनाते हैं, उसकी ईंट ही खींच देने में ये लोग न जाने क्या आनन्द पाते हैं ? अहिन्दी भाषी तो हमें श्रद्धा से देखते हैं और देख भी रहे हैं, पर हमारे हिन्दी भाषी ही हमारी आलोचना कर रहे हैं, हमने तो बापू से व्रत लिया था कि हिन्दी - सेवा में ही तन - मन से रत रहेंगे ।

प्रश्न— आज के कवि सम्मेलनों और कवियों के बारे में आप क्या कहना चाहेंगीं ।

उत्तर— क्या कहूं मैं ! कहां हैं वे कवि और कवि सम्मेलन ? आज तो कवि सम्मेलनों में कविगण जाते हैं । मंच पर बैठे ये कवि आपस में एक दूसरे को सांप समझते हैं । कहां था हम लोगों में ऐसा द्वेष भाव ? हमारा युग तो बड़े सद्भाव का युग था । आज वैसा भाव अब कहां है ?

प्रश्न— बुआ जी, अब एक अन्तिम प्रश्न स्व० दद्दा (राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त) के बारे में, उनकी जन्म शताब्दी तथा उनके परिवार के सम्बन्ध में आप क्या कुछ कहना चाहेंगीं ?

उत्तर— "दद्दा ! भैय्या ! उन्हें तो मैं कभी न भूल सकूंगी । उनका घर तो मेरा मायका बन गया था । दद्दा कहा करते थे, हमारी एक ही तो बहिन थी । जब वह चली गई, तो हमारे दुःख में स्वयं भगवान इतना दुःखी हो गया कि उसने हमें दूसरी बहिन (महादेवी) को भेज दिया । उनसा भाई और सहृदय संरक्षक खोकर मुझे जो दुःख हुआ था, उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता (नेत्रों में आंसू आ गए थे, गला अवरुद्ध हो गया था) वे सच्चे अर्थों में राष्ट्रकवि थे । उनके सम्पूर्ण साहित्य में भारत की समूची संस्कृति ही समा गई थी, जो राष्ट्रीयता का सच्चा प्रमाणपत्र है । राष्ट्रकवि की उपाधि तो उनके साथ ही चली गई । स्वर्गीय ' दिनकर ' तथा भवानीप्रसाद मिश्र या अन्य किसी कवि के काव्य में वह राष्ट्रीय तत्त्व कहां, जो दद्दा के काव्य में था ? जितने सम्मान श्रद्धा और अभिनन्दन के पात्र दद्दा थे, वह उन्हें अब तक मिल ही कहां पाया है ? डा० नगेन्द्र, गंगाशरणसिंह आदि उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते हैं । दद्दा के लिए ये लोग अब भी कुछ कर-करा सकते हैं । उन्हें इस सम्बन्ध में अवश्य कुछ करना कराना चाहिए यदि वे, अन्य या आप लोग कुछ करा सकें, तो मुझे बड़ा अच्छा लगेगा । उनकी जन्म शताब्दी पर बहुत कुछ होना और कराया जाना चाहिए । देश में ही नहीं, वरन् सारे विश्व में इसे पर्वोत्सव की भांति सोल्लास मनाया जाए । मैं एक बार चिरगांव गई थी । वहां के हाल देख-सुनकर तो हृदय पीड़ा से भरा उठा था । दद्दा के चबूतरे (समाधि) की दुर्दशा का क्या वर्णन करूं ? जगह-जगह घास उगी हुई थी । कोई वहां दीपक तक नहीं जलाता था । क्या क्या कहूं अब दद्दा के बारे में ? उनसा निश्छल व्यक्ति तो और कोई देखा नहीं । उनसा भाई खोकर मेरे ही हृदय की नहीं, वरन् सम्पूर्ण देश की शून्यता कभी भी न भर पाएगी । उनके भतीजों ने तो दद्दा परिवार के साथ जो विश्वासघात किया है, उसकी मिसाल तो महाभारत के पात्र शकुनि, कर्ण, दुःशासन आदि से दी जा सकती है । उनमें से एक से तो मैंने एक बार कह ही दिया था .... "तुम बड़े विकट आदमी हो । तुम तो महाभारत के शकुनि मामा निकले जिसकी भांति तुमने अपना सारा परिवार ही बरबाद कर दिया । दद्दा के परिजनों को तो तुमने कष्ट धोखा आदि दिया ही, हमारी पुस्तकों के बारे में भी तुमने हमें मुगालते में रक्खा ।" बड़ा दुष्ट लड़का निकला वह । दद्दा की मर्यादा जो नहीं रख सका, हमारी क्या रखता ? दद्दा की स्मृति रक्षा हेतु बापू (स्वर्गीय सियारामशरण गुप्त) द्वारा ट्रस्ट निर्माण के लिए सुरक्षित पचास हजार रुपये की राशि भी वह हड़प गया ।

आ० दद्दा को याद करती करती महादेवी जी इतनी शोक द्रवित हो गईं कि उनका गला भर आया । अतः हमने यहीं अपनी वार्ता को ओर उन्हें विश्राम देना उचित समझा । ●

बुन्देलखण्ड की प्रमुख विमुक्त जातियां : संक्षिप्त परिचय

● डा० पी० आर० शुक्ल,

सेन्ट्रल डिटैक्टिव ट्रैनिंग कालेज कलकत्ता द्वारा प्रकाशित ए ब्रीफ डिस्कॅर्स आनदि इम्पोटेन्ट एक्स नोटीफाइड (क्रिमिनल) ट्राइस आफ इण्डिया' के अनुसार भारत में १५८ अपराधी जनजातियां पाई जातीं हैं। इनका एक बहुत बड़ा भाग उत्तर प्रदेश में रहता है ।

सन् १९५१ में भारत में उनकी संख्या २२६८३४८ थी । उत्तरप्रदेश में ३० से ४० के बीच अपराधी जनजातियां पाई जातीं हैं, जिनकी संख्या १९४१ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार १६६८८४५ थी। सन् १९५२ में अपराधी जनजातियों का नौटिफिकेशन समाप्त हो जाने के कारण अब उनकी सही जनसंख्या का मालूम करना एक कठिन कार्य हो गया हैं। यहां हम भारत में पाई जाने वाली विमुक्त जातियों, उनकी जनसंख्या सामाजिक संगठन, आर्थिक संरचना तथा अपराधी कार्य आदि को न लेकर बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पाई जाने वाली चार प्रमुख विमुक्त जातियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं –

कन्जर

निवास स्थान:–कंजर विमुक्त जाति के सदस्य मध्यप्रदेश के ग्वालियर, भोपाल तथा राजगढ़, पश्चिमी वंगाल के मिदनापुर, महाराष्ट्र तथा उ० प्र० में पायेजाते हैं । उ० प्र० में ये झांसी, हमीरपुर, तथा जालौन जिले में अत्याधिक मात्रा में पाये जाते हैं। ये सामान्य वस्तियों से अलग अपनी बस्तियां बसाते हैं तथा सभ्य लोगों से स्वयं को अलग रखना पसन्द करते हैं ।

अपराधी कार्य :– कंजर की तुलना उ० प्र० में बहुत बड़ी संख्या में पाई जाने वाली नट जनजाति से भी की जा सकती है । कंजर स्त्रियां नाचती गाती हैं तथा नटों के समान रस्सो पर चलकर तरह-तरह के मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं। पुरुष सदस्य ढोलक वजाकर भीड़ एकत्रित करते हैं तथा अपनी स्त्रियां तथा वच्चों को खेल दिखाने में सहयोग देते हैं । दक्षिणी कन्जर स्त्रियां तथा पुरुष दोनों ही कान आदि के डाक्टर वन-कर मसाला पीसने के सिलवट्टे टांकने वाले बनकर या जूट अथवा टाट के थैले बनाकर वेचने वाले वनकर सभ्य लोगों के बीच पहुंचते हैं।

दोनों ही प्रकार के कंजर डकैती, राहजनी, सेंध लगाना तथा पशुओं की चोरी करते हैं। आजकल कंजर रेलवे सामान की भी भारी मात्रा में चोरी करने लगे हैं । कंजर डकैती तथा राहजनी के लिये एकान्त में वसे छोटे गांव के लोगों को भयभीत करते हैं । तथा उनकी सम्पत्ति लूट कर ले जाते हैं । अधिकतर ये बाजार से लौटने वाले ग्रामीणों को लूटते हैं व उनकी स्त्रियों एवं बच्चों के जेवर उतरवा लेते हैं। सेंध लगाने का कार्य करने के लिये कंजर खन्ता तथा वगली औजारों का प्रयोग करते हैं। इस कार्य को करने के लिये ये दो टोलियो में वंट जाती हैं। एक टोली दोपहर तथा दूसरी दोपहर बाद ढोलक बजाकर नाच-गाकर तथा रस्सों व बड़े-बड़े बांसों पर नटों के समान खेल दिखाकर सामान्य जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं, जबकि दूसरी टोली के सदस्य घरों के भीतर घुसकर ताले तोड़कर नकद तथा आभूषण तथा वहुमूल्य वस्तुओं की चोरी करते हैं । घरों के भीतर घुसने के लिये रोशनदानों तथा छोटी-छोटी खिड़कियां का प्रयोग करते हैं । तथा अन्दर सोती हुई स्त्रियों तथा बच्चों के जेवर भी उतार कर ले जाते हैं।

रेलवे के सामान की चोरी में ये रुकी हुई अथवा चलती हुई दोनों ही प्रकार की मालगाड़ी के खुले हुए डिब्बों से करते हैं। दक्षिणी कंजर स्त्रियां चलती हुई रेलगाड़ी से इस प्रकार की चोरी करने की कला में बड़ी निपुण होती हैं । कंजर रास्ते में चलते हुए पशुओं तथा घरों में बंधे हुए भेड़, बकरी, गाय, वैल, भैंस आदि पशुओं को बड़ी सफाई से चुरा ले जाते हैं। ये चोरी के पशुओं को अपने पास नहीं रखते, बल्कि दूर के बाजारों में ले जाते हैं व वेच देते हैं। भेड़ बकरी के मांस के शौकीन होने के कारण चुराई हुई बकरियों व भेड़ों को मारकर खा जाते हैं ।

दक्षिणी कंजरों को पशुओं की चोरी करने का अपना निराला तरीका है। ये अपने साथ वहुत से पशु लेकर चलते हैं व अपने पशुओं के साथ ही ये आसपास के चरते हुए पशुओं को भी मिला लेते हैं एवं सभी पशुओं को बड़ी तेजी के हांकते हुए चोरी के स्थान से मीलों दूर ले जाते हैं। कभी-कभी ये पशुओं की चोरी का दूसरा तरीका भी अपनाते हैं। ये चुराये हुए पशुओं को किसी नाले आदि के पास तक हांक ले जाते हैं। तथा उनके हाथ-पांव बांध देते हैं। जैसे ही अंधेरा है जितने तेजी से संभव होता है दूर चले जाते है, ये भेड़, बकरी, गाय, बैल आदि पशुओं के साथ ही साथ घरों केभीतर से तथा इधर-उधर से मुर्गे मुर्गियों की चोरी भी करते हैं ।

कंजर चोरी किये हुए जेवर तथा अन्य सामान्य सामान्यत: स्वयं नहीं बेचते, बल्कि किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से विकवा देते हैं। चोरी किये हुए कपड़ों को रंगवा कर उनका स्तेमाल स्वयं कर लेते हैं। कभी-कभी ये अच्छे-अच्छे कपड़ों के झोले सिलवाकर उनमें अनाज भर लेते हैं। इसी प्रकार चोरी के वर्तनों आदि के नाम मिटाकर वेच देते हैं या स्वयं इस्तेमाल करते हैं। सामान्यत: कंजर उ० प्र०, म० प्र० महाराष्ट्र, राजस्थान बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, मद्रास आन्ध्रप्रदेश तथा मैसूर आदि प्रान्तों में पाये जाते हैं ।

करवाल नट

निवास स्थान :– करवाल नट सामान्यतः हिन्दू होते हैं, किन्तु मुस्लिम भी होते हैं। हिन्दू नट भोजपुर के आरा जिले के मूल निवासी हैं तथा म० प्र० के सागर तथा जबलपुर व उ० प्र० के कानपुर, झांसी, हमीरपुर, बांदा तथा पश्चिमी बंगाल के २४ परगना आदि जिलों में पाये जाते हैं।

अपराधी कार्य :– करवाल नट सामान्यतः भिखारियों का वेश बनाकर सभ्य बस्तियों में घूमते हैं। कभी-कभी ये भेड़, बकरियों का व्यापार भी करते हैं। इनकी स्त्रियां नाचने-गाने का काम करती है तथा बंदरों का नाच दिखाकर भी जीविकोपार्जन करती हैं। मुसीबत के समय या कठिन धनाभाव की परिस्थितियों में ये स्त्रियां वेश्यावृत्ति भी अपना लेती हैं। मुस्लिम करवाल नट सामान्यतः पशुओं का व्यापार करते हैं। इनका मुख्य कार्य बकरी-बकरे तथा वर्तनों की चोरी करना है। ये घरों के अन्दर से वर्तनों तथा जानवर उठा ले जाते हैं तथा इन्हें बाहर बेच लेते हैं। कभी-कभी ये धोखाधड़ी तथा अन्य अपराधी कार्य भी करते हैं।

करवाल नट हरे-भरे खेतों को भारी हानि पहुंचाते हैं। खेतों में अपने पशुओं को चरने के लिये छोड़ देते है, जिससे खेत नष्ट हो जाते हैं। अपने भोजन के लिये तथा पशुओं के लिये ये खड़ी फसल को चोरी से काटने का कार्य करते हैं। करवाल नट १० या १२ लोगों की टोली बनाकर अपराध करते हैं। एक टोली के कुछ सदस्य भीख मांगकर या नाच-गाकर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं, जबकि अन्य सदस्य अपने घरों के भीतर घुसकर सामने पड़ा हुआ जेवर कपड़े या बरतन आदि अपने कपड़ों में छिपाकर ले जाते हैं।

मुस्लिम नट कुछ धन एडवांस में देकर गांव के लोगों से पशुओं की खरीददारी करते हैं और शेष धन बाद में देने का वादा कर लेते हैं। अन्यत्र जाकर उन पशुओं को बेच देते हैं तथा शेष धन उन व्यक्तियों को वापस नहीं करते हैं, जिनसे पशु खरीदा होता है। इसी प्रकार ये लोग इधर-उधर से अनाथ बच्चों को ले आते हैं तथा उन्हें पालपोस कर कुछ समय अपने पास रखने के बाद अपने बच्चे बताकर कुचबन्दी तथा नटनजोगी के हाथ बेच देते हैं। ये लोग बहुत ही कठोर तथा निर्दयी होते हैं। पुलिस तथा ग्रामीण व्यक्तियों के साथ में हमेशा आक्रामक और क्रूर तरीके से पेश आते हैं। करवाल नट भी चोरी का सामान स्वयं बेचकर अन्य व्यक्तियों के माध्यम से बिकवाते हैं। ये लोग उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, पश्चिमी बंगाल तथा उड़ीसा आदि प्रांतों में अपराध करते हैं।

सनोरिया

निवास स्थान :– सनोरिया उ० प्र० के झांसी तथा मध्य प्रदेश के ओरछा, दतिया तथा बिलासपुर आदि क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

अपराधी कार्य:– ये लोग सामान्यतः मजदूरी का कार्य करते हैं। इनके बच्चे नदियों तथा तालाबों के किनारे बने स्नान घाटों से नहाने वाले व्यक्तियों के कपड़े उठा ले जाते हैं।

सनोरिया दो या तीन संख्या में मिलकर स्नान घाटों से कपड़े तथा अन्य सामान्य चोरी करने का कार्य करते हैं। एक व्यक्ति जिसे चांपा कहते हैं, अपने को उच्च जाति का व्यक्ति बताकर उसी प्रकार का वेश धारण करता है तथा घाट पर आने वाले व्यक्तियों को शुद्ध और पवित्र होने के लिये घाट पर नहाने हेतु प्रेरित करता है। जब वह व्यक्ति नहाने लगता है, तो चांपा के अन्य साथी घाट के किनारे से उसके कपड़े तथा अन्य सामान लेकर गायब हो जाते हैं। यदि स्नान करने वाले व्यक्ति के सामान की रखवाली कोई स्त्री कर रही होती है, तो चांपा का एक साथी उस स्त्री के समीप ऐसी मुद्रा में विश्राम के बहाने बैठता है कि स्त्री को मजबूरन अपने सामान की ओर पीठ करके बैठना पड़ता है। इसी बीच चांपा के दूसरे साथी सामान तथा कपड़े लेकर भाग जाते हैं। सनोरिया चलती हुई रेलगाड़ी से लोगों का सामान चोरी करते हैं। ये सबसे पहले मोम या किसी ऐसे ही किसी चिपचिपे पदार्थ से सामान को सीट के नीचे चिपका देते हैं। तत्पश्चात जब सामान का मालिक चला जाता है या कोई अवसर मिलता है, तो ये सामान लेकर भाग जाते हैं।

सिनोरिया के चोरी करने का ढंग बरावर (Barwar) तथा भाम्पत ((Bhampat अपराधी जनजाति के समान हैं। सिनोरिया भी चोरी के सामान को अन्य व्यक्तियों के माध्यम से बेचते हैं। ये लोग उ० प्र०, म० प्र०, बिहार, पश्चिमी बंगाल के क्षेत्रों में अपराध करते हैं।

कबूतरा

निवास स्थान :– कबूतरा उत्तर भारत में पाई जाने वाली एक ऐसी तथाकथित विमुक्त जनजाति है, जिसके बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। इनके विषय में कोई साहित्य भी शायद कठिनाई से उपलब्ध हो। झांसी जनपद के गजेटियर में कहीं भी इनका उल्लेख नहीं किया गया। १९६१ की जनगणना रिपोर्ट से भी इनका सही विवरण प्राप्त नहीं होता। ये बहुत बड़ी संख्या में बुन्देल खण्ड क्षेत्र के झांसी जनपद में पाये जाते हैं। उत्तर भारत में झांसी जनपद के अतिरिक्त बरेली, तथा बदायूं जनपदों में भी इन्हें देखा जा सकता है।

कबूतरा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई तथा इनका मूल निवास कौन सा हैं, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इनके शारीरिक लक्षण अपने पास के निवासियों से भिन्न हैं। इनका रंग बहुत गोरा होता है। अधिक श्रम करने तथा धूप में

रहने के कारण पुरुषों का रंग सॉवला पड़ जाता है। नाक लम्बी एवं नोकदार, आंख भूरी तथा कद लंबा होता है। प्रजातीय लक्षणों को देखते हुए इन्हें जिप्सी मूल की जनजाति कहा जा सकता है। एक अन्य बिचार धारा के अनुसार कबूतरा की उत्पत्ति उत्तर भारत की तरह एक बहुचर्चित जनजाति नट से हुई है, परन्तु इनसे व्यक्तिगत रूप से सम्बन्ध स्थापित करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नटों से इनका सम्बन्ध कभी नहीं रहा। कबूतरा की उत्पत्ति को एक तीसरी विचार-धारा प्रस्तुत की जा सकती है। ये अपने नाम के साथ सिंह का प्रयोग करते हैं तथा अपने को क्षत्रिय राजपूत कहते हैं। इससे ऐसा लगता है कि इनका सम्बन्ध राजस्थान की किसी राजपूत क्षत्रिय जाति से है, क्योंकि अनेक जनजातियों की उत्पत्ति इस प्रकार से हुई है। ये वह राजपूत भी हो सकते हैं, जिन्होंने इस्लाम के भय से भ्रमणकारी जीवन आरम्भ किया हो तथा बाद में अपराध करना शुरू कर दिया हो। इनमें से कोई भी बिचार धारा ठीक हो सकती है। इस बिषय में कोई भी निर्णय गम्भीर अध्ययन के बाद ही दिया जा सकता है।

कबूतरा कहीं भी स्थाई रूप से नहीं रहते इसलिये इनके निवास-स्थान को डेरा कहा जा सकता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में झांसी जिले के अतिरिक्त ये ललितपुर जिले में भी पाये जाते हैं, जो पहले झांसी जिले के अन्तर्गत ही आता था।

अपराधी कार्य:– अपराध इनका प्रमुख पेशा है, जिसे छोड़ पाना इनके लिए आसान नहीं है। इनके समुदाय में अपराध को केवल सामाजिक मान्यता ही नहीं अपितु धार्मिक मान्यता भी प्राप्त है जो कबूतरा अपराध नहीं करता, उसे अच्छा नहीं समझा जाता। वे सामान्यतः निम्न प्रकार के अपराध करते हैं।

१. कच्ची शराब बनाना व बेचना–

लगभग प्रत्येक कबूतरा परिवार में कच्ची देशी शराब बनाने व बेचने का कार्य होता है। इस कार्य को स्त्रियां करतीं हैं। स्त्रियां ही कच्ची शराब बनातीं हैं (कभी-कभी इस कार्य में पुरुष उनकी सहायता करते हैं) और उसे शहर में आकर बेचतीं हैं। कभी किसी भी पुरुष को शराब बेचते नहीं देखा गया।

२. राहजनी–

पैदल साईकिल या स्कूटर पर सड़क के रास्ते जाते हुए व्यक्ति का धन तथा सामान छीन लेना इनका दूसरा प्रमुख व्यवसाय है। यहां पर सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि ये राहजनी के साथ-साथ फौजदारी, मारपीट भी करते हैं। यदि कोई व्यक्ति इनसे घबराकर अपने आप ही अपना सामान इन्हें देना चाहे, तो ये नहीं लेते वरन् "हम हराम का नहीं खाते, मेहनत का खाते हैं ऐसा कहते हुए ये पहले राहगीर को पीटते हैं, फिर सामान छीन लेते हैं। ये राहजनी का कार्य अपने गांव से काफी दूर जाकर करते हैं।

३. सेंध लगाना तथा चोरी करना–

ये घरों में सेंध लगाकर चोरी करने का कार्य सामान्यतः बरसात के दिनों में करते हैं। बरसात में घरों की दीवारें पानी के कारण कमजोर पड़ जाती हैं। अतः सेंध लगाने में आसानी होती है। भारी वर्षा के समय आवाज भी कम होती है। इस कार्य में स्त्रियां भी कभी-कभी इन्हें सहयोग देती हैं। इनकी चाल इतनी सधी होती है कि सोते हुए व्यक्ति के पास से सौ कबूतरे गुजर जायेंगे और उस व्यक्ति को किसी तरह की आहट नहीं होगी।

४. बाल कतरनी (बाल कटी करना)

जब खेतों में फसलें तैयार खड़ी होतीं हैं, तबसे खेतों में चोरी का कार्य करते हैं। वे खेत से पूरा पौधा कभी नहीं उखाड़ते, बल्कि ऊपर का वह भाग, जिसमें बालें होतीं हैं, उसे हाथों से ही बड़ी सफाई से तोड़ लेते हैं। इस कार्य में ये इतने तेज होते हैं कि एक रात में ही दो बीघे खेत की बालें उतार लेते हैं। इस अपराध में स्त्रियां भी साथ होती हैं।

एक सहभागी अवलोकन के द्वारा अपराधी सम्बन्धी अन्य सूचनायें भी इनके विषय में प्राप्त हुई हैं। अपराध के लिए ये वर्षाऋतु को ही अधिक उपयुक्त मानते हैं। इस मौसम में ये अपने डेरों पर नहीं मिलते। गर्मियों के दिन इनके लिये बड़े दुखदाई होते हैं, क्योंकि लोग बाहर सोते हैं व जरा सी आवाज होने पर इनके पकड़े जाने का डर होता है। बूढ़ा कबूतरा भी अपराधी कार्य ही करता है। शरीर के अशक्त होने के कारण वह चोरी, राहजनी, बाल कतरनी या अन्य अपराध करने के योग्य नहीं रह जाता तथा वह अपने गांव के पास ही मुर्गी, मुर्गे, बकरी, बकरे की चोरी करता है। ये चोरी किये सामान को अन्य लोगों के माध्यम से बेचते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ–

१–मेमोरिया सी० बी०, सोसल प्राबलम्स एण्ड सोसल डिसआर्गनाइजेशन, इलाहाबाद।
२–मजूमदार डी० एन०, रेसेस एण्ड कल्चर्स आफ इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।
३–राव एस० बी०, फैक्ट्स आफ क्राइम इन इंडिया, एलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १९६७।
४–रघुवैया वी०, आइव्स आफ इंडिया, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, नई दिल्ली।
५–फच. स्टीफेन, दि एबोरीजनल ट्राइब्स आफ इंडिया, मैकमिलन, इंडिया, नई दिल्ली।
६–मिश्र यू० एस० तथा श्री तिबारी पी. के., भारतीय आदिवासी, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी लखनऊ, १९७५
७–शुक्ल पी० आर०, अपराधी जनजाति कबूतरा नट, वेतवा वाणी, प्रथम अंक बुन्देली परिषद, झांसी, १९७८
८–शुक्ल पी० आर०, बुन्देलखण्ड क्षेत्र की प्रमुख जनजातियां, अप्रकाशित शोध पत्र।

—प्राध्यापक बुंदेलखण्ड महाविद्यालय, झांसी

जनतन्त्र की वर्षगांठ पर एक कहानी

शहीद

● डा० परमलाल गुप्त

करीब डेढ़–दो सौ घरों के उस गांव में सूरज देरी से निकलता था। पूर्व दिशा में एक ऊंची पहाड़ी थी और पश्चिम की तरफ ढलान। पहाड़ी रांकड़ जमीन में खेती बहुत कम हो पाती थी। जिनके पास ज्यादा जमीन थी, वे थोड़ी सी जमीन में रहट के सहारे गेहूं या जौ की फसल कर लेते थे। बाकी में एक ही खरीफ की फसल हो पाती थी– कौदो, समां या जुनई। जिनके पास जमीन नहीं थी या कम जमीन थी, वे सब बाल–बच्चों सहित दो महीने के लिये चैत काटने मैदान की तरफ निकल जाते थे। मजूरी में एक–एक परिवार को बोरा–दो बोरा गेहूं मिल जाता था। उसका आधा भाग राजा साहब की हवेली में पहुंचाने के बाद किसी तरह गुजर हो पाती थी। बूढ़े और अशक्त बंटाई पर महुआ बीनते थे। बरसात उबले महुओं और जाड़ा कौदो–समां पर कट जाता। गर्मियां मजूरी में निकल जातीं। जो गेहूं बचता, उसे सेठ गिरधारीलाल की दुकान में बेचकर बाकी जरूरतें पूरी करते।

गांव के दस–पन्द्रह घरों को छोड़कर सब चैत काटने जाते। इकट्ठे जत्थों में। मर्द औरतें, बच्चे सब पोटलियां सिर पर रखे। गीत गाते हुए। शाम को किसी गांव में पेड़ों के नीचे ये अलग गांव बसा लेते। औरतें कंडे और लकड़ियां बीनकर आग जलातीं। इधर–उधर खाने–पीने की व्यस्तता बढ़ जाती। परस्पर बातों और चिल्ल–पों का शोर गूंज उठता। रात घहराने पर सब अपने तार–तार कपड़ों में निढाल जमीन पर सो जाते इसी के साथ युवक और युवतियों के प्रेम प्रसंग भी चलते रहते। यहां गांव का बंधन शिथिल हो जाता। भोर होते ही यात्रा का अगला दौर शुरू हो जाता। इसी बीच बीमारियां और मौतें भी आती रहतीं, परन्तु पापी पेट सबको धकेलकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहता।

गांव में केवल दो मकान पक्के थे। एक सरूपसिंह की हवेली और दूसरी सेठ गिरधारीलाल की दुकान। सरूप सिंह गांव में राजासाहब कहलाते थे। उनके पास सबसे ज्यादा जमीन थी। वे पुराने जमींदार के वंशज थे। इस गांव को उन्हीं के परदादा ने बसाया था। वे मालिक थे और बाकी सब उनकी रैयत। पुराने रसूख उसी तरह चले आते थे। जब गांव करीबन खाली हो जाता, तब सुरक्षा का सारा भार राजा साहब पर होता था। इसके बदले कटाई की मजूरी का आधा हिस्सा राजा साहब को नजर करना पड़ता था। राजा साहब राजा न होते हुये भी वाकई राजा थे। बिना उनकी मर्जी के गांव में पत्ता भी नहीं खड़क सकता था।

गिरधारीलाल की दुकान सब वस्तुओं का संग्रहालय थी। सुई, धागा, नमक, गुड़ से लेकर कपड़ा और कैरोसीन आयल सब उसमें मिलता था। कंट्रोल की चीजों का कोटा भी उन्हीं के पास था। गिरधारी लाल लोगों की हर जरूरत पूरी करते थे। गेहूं खरीदी, उधार, रहन आदि सब काम उनसे सधता था। उनका व्यवहार भी मीठा था।

गांव में दो लोग और थे, जिन्हें काफी सम्मान प्राप्त था। एक थे मुंशी सदाचरण और दूसरे मनोहर लाल वैद्य। मुंशी सदाचरण गांव के स्कूल के प्रधानाध्यापक थे। वे ऊंचे इकहरे शरीर के व्यक्ति थे। सिर और दाढ़ी के बाल खिचड़ी हो गये थे। वे कमीज के ऊपर बन्द गले का कोट और नीचे धोती पहनते थे। दालों में उर्द और सब्जियों में भटे का भर्ता उन्हें पसन्द था। उन्हें अक्सर डाढ़ में दर्द उठता। वे ठोड़ी को हाथ से दाबे हुये मनोहर लाल वैद्य के पास पहुंचते।

वैद्य जी उन्हें इस मुद्रा में देखकर दूर से ही कहते– 'वाह मुन्शी जी' फिर दर्द हुआ न ? उर्द की दाल खाई होगी या भटे का भर्ता। आपको लाख बार मना किया कि ये चीजें बहुत बादी करती हैं, इनको तो छूना भी न चाहिये, लेकिन आप मानते ही नहीं।

वैद्य जी, कसम ले लीजिये, कल से कुछ नहीं खाया, मालूम पड़ता है यह डाढ़ मेरे प्राण ले जायेगी। जल्दी कोई दवा दीजिये, जान निकली जा रही है।" मुंशी जी सफाई देते हुये कहते।

वैद्य जी अदरक, लौंग, पीपर, कालीमिर्च आदि अनेक वस्तुओं के गुणों का विस्तार से वर्णन करते। मुन्शी जी की डाढ़ में लौंग का तेल लगाते। मुन्शी जी थोड़ी राहत की सांस लेते।

स्कूल एक कच्चे घर में लगता था। मुन्शी जी की चारपाई भी वहीं पड़ी रहती थी। स्कूल से फुर्सत पाकर शाम को वे वैद्य जी के यहां जाते, फिर दोनों राजा साहब के दरबार में उपस्थित होते। राजा साहब और वैद्य जी घर में निकलवाई महुये की शराब पीते, परन्तु मुन्शी जी उसे हाथ न लगाते। इसलिये उनके लिए भंग बूटी तैयार रहती। जब रात गये सरूर में वे लौटते, तब उन्हें ध्यान न रह जाता कि वे लड़कों को कब से क्या पढ़ा रहे हैं? बोर्ड का इम्तिहान देनेवाले लड़कों को मुन्शी जी रात को स्कूल में बुलाते थे ये लड़के रात को मुंशी जी के पास ही पढ़ते और सोते थे। इनमें ज्यादातर ऊंची जाति के लड़के थे। एक नाई था– नारायण! उसे मुन्शी जी के पैर भी दबाने पड़ते थे!

नारायण पता नहीं कैसे स्कूल में आ गया था। उसका परिवार चैत काटने नहीं जाता था। जमीन कोई खास नहीं थी। पिता धन्नू अपना पैतृक धन्धा करता था। वह राजा साहब के भी बाल काटने जाता था। औरत राजा साहब के यहां कमाती थी

इससे कपड़े लत्ते और खाने-पीने का सामान मिल जाता था। गुजर आराम से हो जाती थी।

धन्नू ऊपर से खुश था, परन्तु अन्दर ही अन्दर वह धधक रहा था। बात यह थी कि उसकी औरत श्यामा बला की खूबसूरत थी। कुन्दनवर्णी देह, अंग-प्रत्यंग सांचे में ढला हुआ। यौवन के उभार में रूप जैसे टपका पड़ रहा हो। फटी धोती से छलकती हुई जब उसके रूप की किरणें राजा साहब की दृष्टि को भेद गयीं, तब उनकी कृपा धन्नू और उसके परिवार पर बरसने लगी। श्यामा रात में देर से लौटने लगी। धन्नू सब समझते हुये भी कुछ न कह सका। श्यामा के हर बार हवेली से लौटने पर दारिद्र्य छंटता गया और घर में चीजें दिखायी देने लगीं। ये सब चीजें धन्नू को काटती थीं, उस पर विद्रूप करती थीं, उसका मुंह चिढ़ाती थीं। परन्तु धन्नू सिवा गहराई में धंसने के कुछ न कर सका। इसी बीच नारायण आ गया। राजा साहब के वीर्य से पैदा होने पर भी वह धन्नू की संतान था। जाति का नाई। सेवा करना ही उसका कर्तव्य और पेशा था। एक परिवर्तन अवश्य हो गया था। वह स्कूल में पढ़ रहा था।

देश में लोकतन्त्र था चुनाव होते थे। चुनाव के वक्त अलग-अलग झंडे लगाये हुये जीपें आती थीं। वे सब राजा साहब की हवेली के दरवाजे पर रुकती थीं। राजा साहब का गांव है। राजा साहब जिसको कहेंगे, सब उसी को वोट देंगे। लोगों में बातें होतीं- हमें क्या करना है वोट-ओट से? राजा साहब जहां कहेंगे, ठप्पा लगा देंगे कौन-सी सरकार, काहे की सरकार? वह यहां क्या करेगी? सरकार क्या राजा साहब से बढ़कर है? राजा साहब ही तो सरकार हैं।"

इसी तरह लोकतन्त्र चलता रहा। चुनाव होते रहे। राजा साहब जीतते रहे। गिरधारीलाल का भण्डार बढ़ता रहा। वैद्य जी पुड़ियां बांटते रहे। मुन्शीजी भंग खाकर पढ़ाते रहे। गांव के लोग चैतुआ बन कर हर साल प्रवासी बनते रहे। हर साल उनकी मजूरी का आधा हिस्सा हवेली में जाता रहा। धन्नू कुढ़ता रहा। बच्चे खाने की चीजों को तरसते रहे। श्यामा गयी रात तक हवेली से लौटती रही। नारायण किसी तरह शहर से मैट्रिक करके लौट आया।

गांव के कुछ और लड़के भी पढ़े थे, उनमें से दो-एक शहर में बाबू हो गये थे, दो-एक पटवारी और अध्यापक, नरैना नारायण बन गया, परन्तु उसने नौकरी नहीं की।

श्यामा ने पूछा- "काऐ तैंने" नौकरी-चाकरी काये नईं तलासी? अब हयां का करहै?"

नारायण ने कहा- "नौकरी मिलतई कां हैं? ऊके लाने सोर्स चाउने परत। फिर सब नौकरी कर लैहैं, तौ हयां गांव में का हूहै?"

"सो तैं हयां का करहै?"

"अपनो काम, खेतीं करहों।"

"जिमीन जांगा का इतेक है, जो तोरो काम चल जैहै।"

"जिमीन बनाउने परत है। न हू है तौ बार बनाउन लगहों।"

"ऐइखां का तोखां पढ़ाओ हतो?"

नारायण चुप्पी लगाकर खिसक गया। उस समय घर की हालत पहले से खराब थी। हवेली से अब खास कुछ न मिलता था। धन्नू ज्यादा गम्भीर और उदास दिखता था।

....

गांव के लोग चैत काटकर वापस लौट आये थे। आकाश में बादलों की छीना-झपटी होने लगी थी। चैत काटकर आने वालों में चमार, कुटवार, कोरी, कुर्मी, काछी, बढ़ई, लुहार आदि जातियों के लोग थे। नारायण ने उन सबको समझाया- 'तुम लोग जो मजूरी का अनाज लाये हो, उसका आधा राजा साहब को मत दो। तुम खुद दाने-दाने को मोहताज हो। मेहनत करके अपने हाड़ तोड़ते हो! तुम्हारी इस मेहनत की कमाई में किसी का कोई हक नहीं है। अच्छा तो यह है कि तुम लोग बाहर चैत काटने न जाओ। अपनी जमीन पर मेहनत करो। पानी के लिये कुएं खोदो, मिट्टी में खाद दो, अच्छे बींज बोओ और अपनी फसल काटो। इससे न चले तो अपना धन्धा करो। अपनी सोसायटी बनाओ। अपना माल सोसायटी के द्वारा शहर में बेचो। वक्त जरूरत सोसायटी से पैसा लो। जरूरत का सामान भी सोसायटी से लो। सेठ गिरधारी लाल की गिरफ्त में मत फंसो। वह तुम्हारा सब कुछ लेकर उल्टे कर्ज के रूप में तुम पर अहसान लाद देता है। तुम कभी पनप नहीं पाते। साल भर मेहनत करके भी फटेहाल रहते हो। अधभूखे रहकर हारी-बीमारी में टूटते हो। देखो, मैंने पढ़-लिखकर भी नौकरी नहीं की मैं खेती में खुद मेहनत करूंगा। भाइयो, तुमने वर्षों से अपनी मेहनत से दूसरों का घरभरा है अब वक्त आ गया है कि तुम सोचो कि तुम्हारी ऐसी हालत क्यों है? राजा साहब और सेठ गिरधारी लाल कोई मेहनत नहीं करते। वे क्यों खुशहाल हैं? उनकी चमड़ी पर क्यों मांस चढ़ता जा रहा है? तुम्हें अब चेतना चाहियें। मिल-जुलकर अपना संगठन बनाना चाहिये। अन्याय के खिलाफ विद्रोह करना चाहिये। एक होने पर कोई तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

नारायण की बात का जादू का-सा असर हुआ। सब युवक एकदम उसके साथ हो गये। गनेश, अनन्त, छन्नू, रग्घू आदि उसके अंतरंग बन गये। कुछ बड़ों-बूढ़ों ने एतराज किया। धनीराम बोला- 'जौन पुरखन की रीत चली आई है, ऊखां न तोड़ो चाहिये। पानी में रहकें मगर सौं वैर करबो अच्छो नईं होत है।"

"बो तो दादा, चायं बैर करो चायं दोस्ती, मगर खाबे खां थोड़ई छोड़हैं

मगर खां जब तक न मारहो, तुम आराम से कैसे रह सकहो ? " नारायण ने बड़ी नम्रता से कहा।

धनीराम आगे कुछ न कह सका। वे सब वास्तव में बिना मुंह और आंख के थे। वे चाहते थे कि कोई उनके दुख–दर्द की बात कहे और उन्हें दृष्टि दे। नारायण उनके लिए देवदूत बन गया।

इन बातों से सारे गांव में तहलका मच गया। एक अव्यक्त आतंक, तनाव और चुप्पी। जब राजा साहब की हवेली में खेती का हिस्सा नहीं पहुंचा, तब वे क्रोध से फुंकार उठे साले, ननजतियों की इतनी मजाल ? इनको जितनी ढील दो, उतना ही सिर पर चढ़ते हैं एक–एक की खाल खींच लूंगा। समझ क्या रखा है ? वह साला नरैना, मेरे ही टुकड़ों पर पलने वाला, उसी को पहले समझना पड़ेगा। "

उस दिन रात गये तक बैठक चलती रही। राजा साहब के कारिन्दे, सिपाही सेठ गिरधारी लाल, वैद्य जी, मुन्शी जी आदि सब मौजूद थे। वैद्य जी ने कहा– " राजा साहब, मेरा कहना यह है कि आप जल्दबाजी से काम मत लें। मेरा सुझाव है कि नारायण को बुलाकर समझा दिया जाय। वह इतने लोगों की बात न टालेगा। "

राजा साहब के इशारे पर सिपाही नारायण को बुलाने चला गया, एक लम्बी चुप्पी के बाद मुन्शी जी बोले– " मैं नरैना को ऐसा नहीं समझता था। "

नारायण ने आते–आते मुन्शी जी की बात सुन ली। उसने कहा– मुन्शी जी वह नरैना खतम हो गया, जो पहले आप लोगों के पांव दाबता था। अब यह नारायण है, नरैना नहीं। हां, आप मेरे गुरू रहे हैं, तो व्यक्तिगत रूप में आपके लिये नरैना बन सकता हूं, परन्तु समाज में मैं नारायण हूं। नारायण का मतलब आप जानते ही होंगे– भगवान, और किसी का नहीं तो अपना तो हूं ही। "

नारायण की इस बात से सब सन्न रह गये। नारायण उस वक्त मोटे गाढे का कुर्ता और पाजामा पहने था, पैरों में चप्पल। सिर के बाल खड़े हुये ! उसका मुख एक विशेष आभा से प्रदीप्त हो रहा था।

राजा साहब उसे गुस्से से घूरने लगे। वैद्य जी ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा– "देखो, नारायण भाई, तुम अपने आदमी हो। राजा साहब भी तुमको अपना मानते हैं, इसलिये तुम्हें बुलाया है। यह तमाशा क्यों खड़ा करते हो ? आदमी की तरह रहो। अभी राजा साहब तुमको नौकरी दिलाने के लिये मिनिस्टर साहब को चिट्ठी लिखने की बात कह रहे थे। नौकरी न करनी हो, तो राजा साहब के काम में मदद करो और आराम से रहो। "

नारायण ने बिना लाग लगाव से उत्तर दिया– " वैद्य जी, मैं आप सबको और

राजा साहब को अच्छी तरह से जानता हूं। राजा साहब क्या नहीं करते ? राजा साहब डाके डलवाते हैं। डाके का माल सेठ गिरधारी लाल के यहां आनन–फानन गलकर शहर के सराफे में पहुंच जाता है। राजा साहब भूखे नंगे लोगों से हिस्से के रूप में टैक्स वसूलते हैं, ताकि वे हमेशा भूखे नंगे रहें। राजा साहब लोगों से बेगार में काम लेते हैं। राजा साहब गांव की औरतों की इज्जत से खेलते हैं। क्या–क्या कहूं ? क्या यह भी कह दूं कि वे मेरी मां के साथ सोते हैं ? इसके बदले क्या वे मुझे आधा हिस्सा देने को तैयार हैं ? क्यों होंगे ? नीच केवल उनका मांस गरमाने के लिये हैं। फिर भी वे गांव के सबसे इज्जतदार आदमी हैं। वे गांव के मुखिया हैं। सब जगह उनका दबदबा है।"

नारायण की इस मुंहफट बात से एकदम सनाका छा गया। राजा साहब की आंखों के डोरे अधिक लाल हो गये। होंठ फड़कने लगे। उन्होंने दांत किटकिटाकर कहा– "मैं उस बेचारे धन्नू का खयाल करता हूं, नहीं तो अभी गोली से उड़ा देता। देख लिया आप सबने ? अब मुझे दोष न देना। "

नारायण बिना किसी प्रतिक्रिया के उठा और दृढ़ता से कदम रखता हुआ वापस चला गया।

श्यामा बहुत बेचैन हो उठी ! धन्नू के उदास और गहराये मुख पर नया खून दौड़ने लगा। उसने अकेले में कई बार " इन्कलाब–जिन्दाबाद " का नारा लगाया। नारायण उसके अन्तर्मन के व्यक्त स्वरूप में अत्यन्त प्रिय हो उठा।

....

दो–तीन दिन अच्छी बारिश हुई। सब लोग उमंग से अपने–अपने खेतों की जुताई के लिये चले। नारायण के बताने के अनुसार सोसायटी बन गयी थी। सबने अपनी कटाई का हिस्सा उसमें जमा करा दिया था। किसी के पास हल था तो बैल नहीं। किसी के पास एक ही बैल था। सबने एक दूसरे की मदद की। बढ़इयों ने हल बनाये लोहार ने फाल लगाये। बैलों को मिलाकर जोड़ियां बनायीं। इस तरह सबके खेत जुतने लगे।

इधर गिरधारी लाल ने कई लोगों पर अपने कर्जे की नालिश ठोक दी। नारायण ने अदालत से उचित कर्ज– अदायगी का फैसला लेकर सोसायटी से उनका कर्ज पटवा दिया। फिर सोसायटी को सरकारी कर्ज मिल गया। सोसायटी ने खाद और बीज का इन्तजाम करके खेत बुवा दिये।

खेत बोने के बाद लोग खाली नहीं बैठे। स्त्रियां– बूढ़े सूत कातने, कपड़ा बुनने, टोकरी बनाने, जूते बनाने आदि कामों में लगे। सोसायटी ने उन्हें कच्चा माल दिया। इसके अलावा सोसायटी ने एक उपभोक्ता भण्डार खोला, इसमें जरूरत की सब चीजें

उचित कीमत पर मिलने लगीं ।

रबी की फसल लेने के लिये पानी का इन्तजाम जरूरी था । कुओं के लिये सरकार ने लोन मन्जूर कर दिया । अब सबको अपना भविष्य उज्जवल दिखाई देने लगा ।

इधर राजा साहब चुप नहीं बैठे थे । उन्होंने सबसे पहले उन लोगों को बेदखल कर दिया, जो उनकी जमीन में रहते थे । उन्होंने बहुतों के खेत भी नाजायज तरीके से अपने कब्जे में कर लिये । कई लोगों को उन्होंने डराया, धमकाया, कइयों को प्रलोभन दिये । कई बार फौजदारी की नौबत आयी । परन्तु नारायण की कुशलता ने मामला सम्हाल लिया । फिर भी आतंक का वातावरण बना रहा । पता नहीं कब क्या हो जाय ? पानी रुक-रुक कर बरस रहा था । इस कारण भी संघर्ष बच जाता था ।

राजा साहब फसल पकने के इन्तजार में थे । परन्तु पंचायत का चुनाव आ गया अब तक राजा साहब निर्विरोध सरपन्च बन जाते थे । कांग्रेस में वोट की राजनीति चल रही थी । राजा साहब के पास साधन सम्पन्नता के साथ-साथ थोक वोट थे, इसलिये पार्टी में उनका अच्छा प्रभाव था । इस बार उनको एम० एल० ए० का टिकिट मिलना प्रायः निश्चित था । पंचायत के चुनाव में नारायण राजा साहब के खिलाफ खड़ा हुआ नारायण की ख्याति आस-पास के गांवों में भी पहुंच गई थी । वहां के लोग अपने प्रति हो रहे अन्याय के प्रति सचेष्ट होने लगे थे । बहुत से लोग नारायण से सलाह लेने आते थे । चुनाव में नारायण की जीत ने राजा साहब की सारी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी ।

राजा साहब बुरी तरह बौखला उठे । हवेली के अपने एकांत कमरे में वे जाम पर जाम ढालने लगे । जब वे पूरी तरह धुत्त हो गये, तब उठकर उन्होंने अपनी दोनाली बन्दूक में कारतूस भरे । फिर बन्दूक लेकर अकेले ही नारायण के घर की ओर चले । उस समय खूब घना अंधेरा था । राजा साहब ने पैर की ठोकर से धन्नू के घर के जर्जर किवाड़ भड़ाम से गिरा दिये । उन्होंने गरज कर कहा– 'कहां है वह हरामखोर नरेना ? आज हमेशा के लिए खेल खत्म कर दूँगा । "

राजा साहब की आवाज सुनकर नारायण बाहर निकला । राजा साहब का यह रूप देखकर पहले तो वह चिन्ता में पड़ गया, परन्तु तुरन्त ही सहज रूप में दृढ़तापूर्वक राजा साहब के सामने खड़ा हो गया । उसने राजा साहब को हिकारत से देखते हुये कहा– " बस यही है आपका असली रूप । लेकिन याद रखिये राजा साहब, नारायण अब व्यक्ति नहीं है, जो मरने पर खत्म हो जाय । वह एक सामाजिक चेतना है, उसे आप किसी तरह खत्म नहीं कर सकते । "

राजा साहब ने क्रोध में उबलकर ज्यों ही बन्दूक का घोड़ा दबाया कि धन्नू उछलकर नारायण के सामने आ गया । दो गोलियां सनसनाती हुई धन्नू के सीने में धंस गयीं । नारायण ने गिरते हुये धन्नू को अपने हाथों से सम्हालते हुये कहा– 'यह आपने क्या किया पिता जी ? "

धन्नू के कपड़े खून से सन गये थे । वह मृत्यु के सन्निकट था, परन्तु उसकी आंखों में चमक थी । उसने कहा– "नारायण बेटा, तूने कभी बताया था कि प्रेमचन्द जी ने कहीं लिखा है कि व्यर्थ जीने से व्यर्थ मरना अच्छा है । सो बेटे जीना तो मेरा व्यर्थ रहा ही, लेकिन मरना व्यर्थ नहीं हुआ । तुम मेरे मरने का रंज न करना । यह वह पीढ़ी मर रही है, जो मन की घुटन के बावजूद कुछ समझ न पाती थी···· अच्छा····विदा.... इन्कि····ला····ब···· जिन्दा···· बा····द । "

धन्नू का स्वर क्षीण होकर बन्द हो गया । नारायण ने लाश जमीन पर रख दी । बन्दूक की आवाज सुनकर सारा गांव एकत्र होने लगा । सब सुन-सुन कर नारायण के घर की तरफ भाग रहे थे । भीड़ जमा होने से पहले राजा साहब खिसक गये ।

कई लोग उत्तेजित होकर राजा साहब को कोसने लगे । कई लोगों ने सलाह दी कि हवेली में आग लगा दी जाय । राजा साहब से बदला लिया जाय । जब भीड़ की उत्तेजना बढ़ने लगी, तब नारायण ने लोगों को शान्त करते हुये कहा– "भाइयो, आप अन्याय के खिलाफ लड़ें । लेकिन आदमीयत को न भूलें । मैं मानता हूँ कि राजासाहब को किसी को मारने का अधिकार नहीं है, लेकिन आपको भी किसी को मारने का अधिकार नहीं है । हमारी खिलाफत इस व्यवस्था से है जो राजा साहब जैसे लोगों को पनपाती है । हमारी खिलाफत अन्याय ओर अत्याचार से है, लेकिन हम खुद अन्याय और अत्याचार की ओर न बढ़े । हां, आप अगर सजग हैं, आपमें एकता है, तो राजा साहब कानून की गिरफ्त से नहीं बच सकते । आप कानून को अपना काम करने दें । '

पुलिस कार्यवाही के वक्त राजा साहब फरार हो गये । वे समझ गये थे कि पहले दस खून करने पर भी कोई उनके खिलाफ चूं नहीं कर सकता था, अब एक खून के खिलाफ ही सौ गवाह तैयार थे । यह जनमत की प्रबल शक्ति थी, जिसके सामने कोई नहीं टिक सकता था । ●

— एस० एच० ६, गोपाल कालोनी
शास्त्रीनगर, सतना, म० प्र०

दो फागुनी गीत / दो हस्ताक्षर

होली बहुत जला ली तुमने, अब तो फाग मनालो साथी ।
कीचड़ बहुत उछाली तुमने, अब तो रंग बरसा लो साथी ॥

ऐसी होली कभी न आई धुआंधार हो गई दिशायें ।
उत्तर-दक्षिण के अंगों की जली लालिमा भरी शिरायें ।
दानवता जलती थी पहले अब मानवता राख हुई है,
प्रेम जले विश्वास जले हैं जली एकता की भाषायें ।
राष्ट्र डिगा आस्था झुठलानी अब भी क्या कुछ शेष रह गया ?
मूर्ति बहुत की काली तुमने, अब तो उसे उजालो साथी ॥

कीचड़ ने इतिहासों के घर इतने आदर कभी न पाये ।
ऋतु पर्वों ने सदा सहज ही सुमन सदाशय के सरसाये ।
कुटिल संधि के सरगम लेकिन ऐसी मीड़ें साध रहे हैं,
केसर के मुख छाई उदासी काई ने त्यौहार मनाये ।
दिल फटते हैं, पड़ी दरारें, घर की लाज सिसकती रोती,
दीं हैं बहुत गालियां तुमने, अब तो रसिया गालो साथी ॥

जब-जब होली जली सुना है, दम्भ जला है, पाप जला है ।
आँच साँच पर कभी न आई मिथ्या का पुतला पिघला है ।
छली होलिका की भस्मी पर प्रह्लादों के प्रण हरियाये,
आग जहाँ पर लगी वहीं पर सागर ने अमृत उगला है ।
विष का अति विस्तार स्वयं ही शिव की खोज किया करता है,
ईर्ष्या बहुत उबाली तुमने, अब तो पतन संभालो साथी ॥

पतझड़ के दिन देखे जिसने उसने नव पल्लव उपजाये ।
पतझड़ ही पतझड़ के मौसम अब जैसे पर कभी न आये ।
धरती की बगिया उदास है, पंछी का बिरवा सूना है,
रचनाकार कुशल हाथों ने अनरथ अपने आप रचाये ।
पत्तों का पानी उतरा है छाया भी वीरान हो गई,
लूट बहुत ली डालीं तुमने, अब तो बाग लगालो साथी ।

फागुन जैसा मास कि सबको अपने गले लगाने आता ।
जला द्वेष के झाड़ कटीले नई-नई फसल उगाने आता ।
कोयल की मीठी तानों से आम्र-कुंज बौरा जाते हैं,
इंसानों की बात कहूं क्या जड़ में प्यार जगाने आता ।
नई कौंप के नए संदेशे फिर हमको समझाने आता,
ज्वाल बहुत फैलाली तुमने, अबतो उसे बुझालो साथी ॥

● — भैयालाल व्यास, छतरपुर

फगुना की सुरभि सनी सौंधी सुगंध
भंवरों का शतदल से अनुपम अनुबंध ।

किरणों की डोली पर पाहुन मधुमास
पतझर के संग पवन, करता परिहास ।
उपवन में विकच उठे सतरंगी फूल,
विरहिन के अंतस में कोटि चुभे शूल ॥
महक उठीं चंचल हो चोंचें स्वच्छन्द
भंवरों का शतदल से अनुपम अनुबंध ।

महकी अमराई लुटा परिमल अनुराग
केकी ने छेड़ दिया, बासंती राग ।
झूम उठे उपवन में, टेसू गुल्लाल
बिखर गई धरती पर चहूँ दिश गुलाल
रतनारी चितवन का बदल गया छंद
भंवरों का शतदल से अनुपम अनुबंध ।

पुलक उठा अंतर्मन बदली हर रीत,
गूंज उठा दूर कहीं मधुमय संगीत ।
कजरारे नयनों में छलका उन्माद
उठी मीड़ मीठी कर प्रियतम की याद ॥
बिखर गया मानिनि के ओंठों मकरंद
भंवरों का शतदल से अनुपम अनुबंध ।

● — वीरेन्द्र शर्मा, टीकमगढ़

ऐन साई द्वारा रचित उपलब्ध हस्तलेखों का विवरण *

● डा० मुरारीलाल अग्रवाल

क० मुं० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय आगरा की शोधपरक पत्रिका भारतीय साहित्य के गतांकों में विद्यापीठ के हस्तलेखों का विवरण प्रस्तुत किया गया है [1] उनमें से लोक–कवि ऐन साई द्वारा रचित उपलब्ध दो रचनाओं– ऐन बिहार और नरचरित्र– का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

ऐंन बिहार में कवि ने अपनी जीवन–यात्रा वर्णित की है इनका जन्म सम्वत् १८४६ में ग्वालियर में एक बंगस पठान के घर हुआ था " के मेरा जनम गुवालियर में बंगस पठान के घर हुवा सिपागीरी के पंथ वाले । " जब ऐन कवि ने २० वर्ष की आयु में होश संभाला और ज्ञात हुआ कि हमारी जाति का कर्म तो रण में लड़ना, मरना और मारना ही है, तब उन्होंने फकीर होने के लिये तीन वर्ष तक नंगे पांव ग्वालियर दतिया, दिल्ली, जयपुर, अलवर आदि की यात्राएं कीं और इन्हें बहुत कष्टों के बाद दिल्ली में सतगुरू हजरत स्याह फिदा हुसैन रसूल साई के दर्शन हुये ।

कवि ने अपने भ्रमण काल में सबके पूछने के बाद भी अपना गुमनाम बताया और कहा कि मेरा नाम गुरू की जबान पर है, जो नाम सतगुरू रखेंगे, वही नाम होगा । काफी सेवा सुश्रूषा करने के बाद गुरू ने 'अॅन' नाम रखा । इसका वर्णन ऐन बिहार के पत्रक २७ पर इस प्रकार है— " .... पी गये । और फिर सिरदा करकें हजूर में उठे हाथ जोड़े उये पिछले पाव से हटते हुये निकले हुजरे से बाहर । उस बषत हजूर ने प्यार महरबानगी के सात पुसि प्रसंद हो के यह नाम अपनी जबान से फरमाया के अॅन । यह सबने सुना फेर साई जी ने मुजसे कहा कै तुम्हारा नाम हजूर ने अॅन फरमाया । जब हमने हजूर को सजदा किया साम् जाइ कै ।
तब फिर आपने जबान से फरमाया अॅन फिर साई जी ने भी कहा अॅन । तब हजूर ने फरमाया कै अॅन के माइना सब तरफ लगता है । सो ये अॅन क्या फिर आपने ही फरमाया कै अॅन अला । जब साई जी नै कहा कै इनका नाम अॅन अला हुसैन । "

ऐंन साई ने अपने गुरू रसूल साई के दिये हुये मन्त्र " जान अजान परगट गुपत सर्वमई भगवान " को शिरोधार्य करके हिंदवानी (हिन्दी) में अनेक रचनाएं, गीता-भागवत, शास्त्र, वेद–वेदान्त आदि पर कुंडलियां, बैत, हदीस, दोहा, चौपाई, सोरठा आदि छन्दों में की हैं । ऐन बिहार के आधार पर रचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१– **इनायत हजूर–** इस पोथी को ग्वालियर की दरगाह में फारसी भाषा में रुस्तम अली नें लिपिबद्ध किया, जिसमें बैंत, रबाई, रेषता, गजल, कुंडली दोहा आदि हैं ।

२– **सिद्धांत सार–** यह हिन्दवानी पोथी है, जिसे दतिया में श्री किशनदास गुसाई ब्राम्हण ने सम्वत् १८८४ में लिपिबद्ध किया । इसमें वेदों, पुराणों, शास्त्रों और मुसल–मानी, अरबी, फारसी की पुस्तकों के दृष्टान्त हैं । इस पोथी में तीन कांड और प्रत्येक कांड के पांच–पांच हुलास हैं । इसमें कुल मिलाकर १०५० कुण्डलियां हैं जिनका विभाजन इस प्रकार है– मंगलाचरण– ५, अरथ भूमिका– ५, उपासना प्रकर्ण– ३०२, ग्यान प्रकर्ण– ५०८, कर्म प्रकर्ण– २२५, उपसंहार– ५ कुल योग– १०५०

३– **सुरा रहस्य–** यह पोथी ग्वालियर में हिन्दी भाषा में दक्खिनी पण्डित मल्हार राव द्वारा लिपिबद्ध की गई । इसमें सुरा– (= शराब) का वर्णन है ।

४– **भक्त रहस्य–** ग्वालियर में पण्डित मल्हार राव द्वारा लिखी गई इस पोथी में कर्म कांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड के निर्गुण और सगुण दोनों तरह के पद हैं ।

५– **अनुभव सार–** ग्वालियर की छावनी में दक्खिनी पण्डितों के प्रश्नों के उत्तर ऐन साई नें अपने अनुभव के आधार पर इस पोथी में दिये हैं ।

६– **गुरू उपदेश सार–** जब रसूल साई ने ऐन साई को हिन्दवानी मंत्र " जान अजान परगट गुपत सर्वमई भगवान " दिया, तब इस मंत्र पर आधारित कई एक कुण्ड–लियों की रचना की ।

७– **ब्रम्ह विलास–** इसे ग्वालियर में कुंवर जेनुद्दीन द्वारा दोहा और कुण्डलियों में लिपिबद्ध किया गया । गुरु–शिष्य की प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया है ।

८– **सुख विलास–** जब जयपुर में सुखदेव जी से भागवत के एकादश स्कन्ध को शुद्धि करवाया तब उनके हेत में कुण्डलियां करके सुख–विलास पोथी रचना की ।

९– **भिछुक सार–** जयपुर में भीख की महिमा कुण्डलियों में लिखी गई है । कुंवर जैनुद्दीन ने फकीर होकर भीख का मारग अपनाया, तब उनके हेत में यह पोथी लिखी ।

१०– **भगवत प्रसाद–** यह जयपुर वाले भगत सुन्दरलाल कायस्थ द्वारा अलवर में लिपिबद्ध की गई । इसमें सुन्दरलाल भगत की ओर से प्रश्न और ऐन साई के उत्तर ९०५ कुण्डलियों में वर्णित हैं, जो संवत् १८८९ की रचना है ।

---

* यह कार्य विद्यापीठ के वरिष्ठ प्रवाचक श्री डा० रामेश्वर प्रसाद जी अग्रवाल की सत्प्रेरणा से उनके निदेशन में तैयार किया गया है ।

१– देखिए– भारतीय साहित्य वर्ष– ६, अंक– ४, वर्ष ८ अंक ४, वर्ष २२, अंक १-४

२– विद्यापीठ हस्तलेख– ऐन बिहार– पत्रक ३४ ।

११- साम हितकार- इस पोथी का स्थान जयपुर है। जब सुन्दरलाल के छोटे भाई श्यामलाल रोज तड़के नमाज के समय ॐकार का तिलक लगाकर आते थे, तो ॐकार के अर्थ में ऐ'न साहब ने कुंडलियां की और श्यामलाल ने उनका लिपिबद्ध किया। इसलिये इसका नाम साम हितकार (= श्याम हितकार) रखा गया। इस पोथी में पांच तत्व, पांच मात्रा का अर्थ सत्ताइस तरह से किया गया है।

१२- हित उपदेश- जयपुर में एक बुजुर्ग बुरांनपां ने सवाल किये और जबाब में ऐ'न कवि ने कुंडलियां करके यह पोथी लिखी।

१३- हरि प्रसाद- सुन्दरलाल के मामा मुन्शी हरीराम द्वारा लिखी गई इस पोथी में गीता के अठारह अध्यायों का माइना (= अर्थ) हुआ है। इसमें मूल कुंडली ४१७ और बार तक टीका लगभग छः हजार हैं। इसे भी जयपुर में सं० १८६१ में रचा गया है।

ऐ'न बिहार- यह ऐ'न साई की १४ वीं कृति है। संवत् १८६२ में मिती कुवार सुदी १३ दिन सोमवार को ग्वालियर में लिखी गई, इस कृति में ऐ'न साई ने अपनी जीवन यात्रा वर्णित की है। विद्यापीठ ग्रंथागार में उपलब्ध हस्तलेख का विवरण इस प्रकार है—

आकार- लम्बाई १६ से० मी०, चौड़ाई २१ से० मी०, पत्रक संख्या- ६६, कृति पूर्ण (सजिल्द) विद्यापीठ अवाप्ति सं०- १०१७, कागज पुराना देशी, स्याही- प्रारम्भ और अन्त में लाल, शेष काली, वर्णों की बनावट के सम्बन्ध में उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार हैं—

१- अैसेही — ऐसे ही	५- ष — ख
२- अरु — और	६- मुलक — मुल्क
३- साप्यात— साक्षात	७- अललाह — अल्लाह
४- अस्तरी — स्त्री	

वाक्य- संरचना सम्बन्धी विशेषता पुनरावृत्ति करने की है जैसे- १- सवाल प्रश्न के जवाब उत्तर कों (पत्रक ४६) २- स्यौर आरम्भ (पत्रक ५२) दोस्त सतसंगियों का प्रयोग तो कई स्थानो पर बार-बार किया है।

कवि-विरचित कुण्डलियां और दोहे

१— मुरसद अलला कोइी कहत कोइी कहै गुर ब्रम्ह।
दोऊ विधि लष गुर सरन गही छोड़ सब कर्म।
गही छोड़ सब कर्म भेष गुर सिर पर लीना।
वाही के परताप ग्यान अनभव प्रभु चीना।
जान अजान गुर गुन कहन अैंन हमारा धर्म।
मुरसद अलला कोऊ कहत कोऊ कहै गुर ब्रम्ह॥ (पत्रक -१)

२— नाम अदब सी असित्री पत का कोइी न लेह।
पत का पत भगवान है जिनै दीनी देह।
जिनै दीनी देह रहैं नित मन के माइी।
सतगुर अरु भगवान येक ही हैं दो नाइी।
पतव्रता पत जो आठों पहर मुदाम।
अैंन कभू लेवे न ही मुष अपने से नाम॥ (पत्रक ४)

३— प्रेम लछना भक्त यह तन की रही न सुद्ध।
भूल गये कुल कान गत विध निषेद की पुद्ध।
विध निषेद की पुद्ध गयैं हो गये बोराइी।
कहीं रोवे कहीं हसैं कहीं चुप हो मुसक्याइी।
धर्म भिष्ट हो जहा तहा अैंन फिरत उनमद्ध।
प्रेम लछना भक्त यह तन की रही न सुद्ध। पत्रक-५)

४— भूल चूक सब कीजियो मेरी माफ हजूर॥
मे सबही औगुन भरा हौं दासी जन कूर।
हौं दासी जन कूर सरन हो दी तुम्हारै।
तुम सतगुर कछू औगुनाह नहि देपत म्हारे।
बार बार विनती ये ही अैंन होय मंजूर।
भूल चूक सब कीजियो मेरी माफ हजूर॥ (पत्रक-५)

५— मिला हुवा है आदमी भूल चूक के साथ।
बोलत बोलत आप ही भूल जात है बात।
भूल जात है बात हाथ का धरा न पावैं।
आपी जावैं चूक आप ही फिर पसतावैं।
इसी बात से है पुषी अैंन पुदा की जात।
मिला हुआ है आदमी भूल चूक के साथ॥ (पत्रक-६)

६— गुर पाये माला तजी तन की गइी बलाय।
आप आप में मिल गये अब कछु कही न जाय।
अब कछु कही न जाय कहूँ तो कोइी न मानै।
गूंगे सम सपना भयो मन ही मन जानै।
अैंन गुरु मौजूद है जो ठंडै सो पाय।
गुर पाये माला तजी तन की गइी बलाय। (पत्रक-२४)

७— कट पुतिली की सी तरह तन मेरा है यार।
सास जो मेरे बीच है सोइी बंधा है तार।

सोइी बंधा है तार हिलाइ चलाइ गुसाइी ।
चाहे जैसे नाच नचाह बैठ घट माइी ।
पुतिली वाले की तरह अँन आप करतार ।
कट पुतिली की सी तरह तन मेरा है यार ॥ (पत्रक–३६)

८— गुरु हमारे हैं सभी जहां तक जो होय ।
जान अजान परगट गुपत दीषत सतगुर गोय ।
दीषत सतगुर गोय जो मेरे सामू आवे ।
हमको तो सतगुर सिवा कोई नहीं दिषावे ।
नसियत हमकों हर तरह अँन करें सब कोय ।
गुरू हमारे हैं सभी जहां तक जो जी होय । (पत्रक–४४)

९— थावर जंगम जीव सब चार षान के जोय ।
नमसकार सब के तही हम करहैं नित सोय ।
हम कर हैं नित सोय सबों ही के गुन गावैं ।
नाम रूप जंग तके मम देव दिषावैं ।
अँन अंस भगवान का दिषलावत है मोय ।
थावर जंगम जीव सब चार षान के जोय ॥ (पत्रक–४४)

१०— सुन्दर ये ही ग्यान सब हरि का सरना लेव ।
जो कुछ तुमसें वन सकैं सो भूषैं की देव ।
सो भूषें को देव ब्रम्ह यक सब में जानो ।
मात पिता गुर साध ब्राम्हण भक्त कुंमानो ।
अँन प्रेम प्रतीत से भगवत कैं पद सेव ।
सुन्दर ये ही ग्यान सब हरि का सरना लेव । (पत्रक–५४)

११— कहा कहा गुन गाऊं मैं हे सतगुर भगवान ।
मैं असाध अग्यान को कीना साध सुजान ।
कीना साधैं सुजान आप मैं लह कर लीना ।
क्रपा कर बैराग ग्यान निरभय पद दीना ।
मेरे मुष वित से सिवा अँन दिया गुन दान ।
कहा कहा गुन गाउं मैं हे सतगुर भगवान । (पत्रक–५६)

१२— विना पांव गिर पै चडै गूगे हरि गुन गाय ।
क्रपा से गुर ब्रम्ह की जल पाषा नति राय ।
जलपाषा नति राय आंधरे आंषे पावै ।
क्रपादिष्ट कर रोग दोष भव सब मिट जावै ।

राइी परवत होत है अँन गुरू जो चाय ।
विना पांव गिर पै चडै गूगे हरि गुन गाय । (पत्रक–६०)

१३— दुष दलदर कै भये वहुत याद हरि होय ।
जब तन पै संकट पडै और न सूझै कोय ।
और न सूझै कोय दुष्य मैं सूझै सांइी ।
और न कछु सुहात है दुष दलदर कै माइी ।
या कारन नृप राज तज अँन जाय बन सोय ।
दुष दलदर कै भये बहुत याद हरि होय ॥ (पत्रक–८०)

१४— जिनकी अैसी चाल है या जग मैं नर सोय ।
आगे पिछै काऊको बुरा कहै नही कोय ।
बुरा कहै नहि कोय अँन सबके गुन गावैं ।
औगुन सांमू आय जहां अंधे हो जावैं ।
बुरी बात के सुनन को बैहरन कैसी पोय ।
जिनकी अैसी चाल है या जग में नर सोय । (पत्रक–८०)

१५— सतोगुनी सुतगीतडा महानभाव घर होय ।
रजोगुनी पुत भीतडा राजन के घर सोय ।
राजन के घर सोय तमोगुन पूतडा माइी ।
सो सब के घर होय बांझ कोई रह जाइी ।
अँन नाम रइ भात कर जग मैं दीपत जोय ।
सतोगुनी सुतगीतडा महानभाव घर होय । (पत्रक–८४)

१६— तीन तरह सो होत है या जग बीच निसान ।
रहै सैंकड़ों बरस तक पूत नाम पहचान ।
पूतनाम पहचान हजारों बरस लौ माइी ।
जो कोइी भीत बनाय नाम ताका रह जाइी ।
अँन गीत जब तक रहै तब तक रहै जहान ।
तीन तरह सो होत है या जग बीच निसान । (पत्रक–८४)

दोहे—

१ उठा बबूला प्रेम का तिनका गया अकास ।
भंवता रमता बहा गया तिनका तिनकें पास ॥

सो यह सुनकै हजूर ने यह फरमाया कै सच है अैसे ही । और फिर अर्ज की मैंने कै या हजूर सतगुरू मैंने हजूर के चरनों का आसरा सरन लिया है। अब हजूर सतगुरू को लाज है सरन गहे की ॥ मं सब तरह से लाचार हो के सरन पकडी है हजूर को लाज

है वहा पकडे की । मै सब तरह से लाचार नालायक सरंमीदा अवाज मीताज सब तरह से हार के हजूर की सरन पकडी है अब हजूर मालक है चाहै सो करै मै सरन हो सरन हो सरन हो हजूर सतगुर साई जी के अब चाही सो करो आप मालक हो ।

(पत्रक–२२)

२ फिरनै चलनै मै कछू अपना नहि अपत्यार ।
नाथ नाथ के हात है अॅन गुरु मुपत्यार ॥ (पत्रक–३६)

बैत—

१— दिलेबेपतर अॅमजहरे जा वस्त । बैं ह र बे मी ज अॅन
मिरा व स्त ॥ (पत्रक–२८)

२— तब कल पीर पावे जब हुवा चॅन ।
किया मावूद नै गुम नाम की अॅन ॥ (पत्रक–२६)

३— हजूर की कृपा महरबानगी से बनाई हुई बैत—
दिले दरयाव का वारा न पारा ।
के जिसमें मौज उठती बेसुमारा ॥
इसी दिल में हकीकत सब समाही ।
सभी कुदरत इसी दिल में दिपाही ।
हकीकत में दिली अला दिपाया ।
अॅन पानें पुदा दिल ही कहाया ।
इसी दिल की कछू सूरत नहीं है ।
इसी दिल को कछू मूरत नहीं है ।
इसी दिल को कहे है लामकानी ।
इसी दिल को कहे है बेनिसानी ।
यही दिल वो है के आगे न पीछे ।
यही दिल वो है के ऊपर न नीचे ।
अॅन दिल की सिफ्ति जिस वषत पाही ।
हकीकत जान की फिर सब दिपाही ।
जिसम में जान है तन जान माही ।
देपना जान का दसतूर नाही ।

दोहा— अॅन जिसम और जान का कोइ लपै न माना ।
गूंगे के सा सापना जाना जिन जाना ॥ (पत्रक–३०)

४— "जान अजान परगत गुपत सर्बमही भगवान"
यह बैत सुनते ही मन में । अनुभव हुवा और हिंदवानी विद्या सब

सूल गई ! चारों वेद छेओं सास्त्र गीता भागवत ॐकार का अर्थ वेदात सिद्धात सब सुल गया । (पत्रक–३३)

नर चरित्र–

यह ऐन कवि की १५ वीं कृति है । यहां मानव जीवन १२ विश्रामों में, ११११३ दोहों, चौपाइयों तथा सोरठों में अंकित है । जब ऐनसाई १८६६ सं० के पर्यटन काल के दौरान ग्वालियर के गढ़ गोपाचल किले में अपने अन्य साथियों सहित ठहरे हुये थे, तब १६ दिन तक बहुत बीमार रहे । उस समय न खाना अच्छा लगे, न पीना अच्छा लगे, केवल भगवान का ही ध्यान मन में लगा रहे । जो मन में दोहा, चौपाई, सोरठा थे, उनके लिखने का आरम्भ सं० १८६६ में शरद पुर्णिमा के दिन मंगलवार को किया जो सं० १८६६ में पौस वदी ११ को पूर्ण हुआ और ब्राम्हण मुख से इस पुस्तक का नामकरण कराया ।[1]

विद्यापीठ के ग्रन्थागार में उपलब्ध इस हस्तलेख का आवश्यक विवरण इस प्रकार है—

नाम– नर चरित्र
आकार १५ × २१ से० मी० लम्बाई–चौड़ाई
पत्रक संख्या– ११७
कृति — सम्पूर्ण
विद्यापीठ अवाप्ति सं०– १०१८
रचनाकाल का प्रारम्भ– सं० १८६६, शरद पुर्णिमा दिन मंगलवार
रचना सम्पूर्ण हुई– सं० १८६६, पौष वदी ११
स्थान– गढ़ गोपाचल (ग्वालियर)
लिपिकाल– सं० १८६६, अषाढ़ वदी ११ सोमवार
लिपिकार– शंकरलाल, मुकाम सवाई जैनगर
स्याही– आरम्भ और अन्त में लाल, शेष काली । प्रत्येक विश्राम के प्रारम्भ और अन्त में लाल स्याही का प्रयोग हुआ है ।

ऐन साई ने ऐन बिहार में दो कुण्डलियां कहीं हैं, उनको नरचरित्र का मसौदा मानकर दोहा, चौपाई, सोरठों में यह पुस्तक तैयार की है—

कुण्डलियां—

१— दुष दलदर के गये बहुत याद हरि होय ।
जब तन पै संकट पड़े और न सूझै कोय ।

१—विद्यापीठ की हस्तलिखित प्रति ऐन बिहार के पत्रक ६५, पर नाना साहब ब्राम्हण द्वारा नामकरण किया गया है ।

और न सूझै कोय दुष्य में सूझत सांई ।
और न कछू गुहात है दुष दलदर के माही ।
या कारन सुष राज तज अँन जाय बन सोय ।
दुष दलदर के भये बहुत याद हरि होय ॥ (पत्रक–८०)

२— जिनकी अैसी चाल है या जग मैं नर सोय ।
आगे पिछे काहूको बुरा कहै नहीं कोय ।
बुरा कहै नही कोय अँन सबके गुन गावैं ।
औगुन साम आय जहाँ अंधे हो जावैं ।
बुरी बात कैं सुनन को बैहरन कै सी पोय ।
जिनकी अैसी चाल है या जग मैं नर सोय । (पत्रक–८०-८१)

नरचरित्र का प्रारम्भ निम्न शब्दों से हुआ है—

श्री गुरनाथ पर : ब्रम्ह हरिॐनमो: ॥ अथ श्री नरचरित्र सुन्दर कथा लिष्यते ।

दोहा— ॐ श्री हरिॐनमो नरनारायण ब्रम्ह ।
सिब स्वरूप किरपाल निधिदाता ग्यांन सुधर्ग ।
सतगुर मोपर ब्रम्ह हं गुर भगवत यक सोय ।
ज्यों सुगंध अरु फूल यक जल बोलायक ओय ।

सोरठा— सुनो भक्त सब यार : सतसंगी छोटे बडे ।
श्री नरचरित विहार : अँन कहत तुम हित कथा ।
औरज कोई नर होइ : हित चित सो बाचैं सुनैं ।
सुष पावैं सब कोइ : सुन अपने अदभुत चरित ॥

चौपाई— नर पर ब्रम्ह अँन करतारा ।
तीन भांत कीना निरधारा ।
प्रथमहि ब्रम्ह निरंजन जानो ।
सबदातीत सतगुरू मानो ।
सो सतगुर श्री नरछब भाई ।
परसो परैं ब्रम्ह सुष दाई ।

कृति की समाप्ति निम्न शब्दों में हुई है—

सोरठा— नरनारायणपास : मालक है सब जगत का ।
उतपत पालन नास : नर प्रभु चाहे सो करें ।

नर सबका मुषत्यार : जहाँ तक सिष्ट जहांन मैं ।
अँन प्रकट करतार : नर साहब बसत गुरसरुप ।

इति श्री नरचरित्र श्री नर की प्रभुता विभूत सुन्दर कथा बरननो नाम द्वादसो बिसराम: । ग्रन्थ अँन साहबरसूलशाही क्रत सम्पूरणं । जनम स्थान गढ़ गोपाचल पोस वदी ११ संवत १८९६ मैं बनतयार हुवा लिषतं संकरलाल मुकाम सवाई जैनगर असाढ़ वदी ११ सोमवार १८९९ ॥

मानव जीवन को सफल बनाने वाले विभिन्न सोपानों का अपने विस्तृत अनुभवों के आधार पर उल्लेख करना रचनाकार का उद्देश्य है । अत: उन्हें ही विश्रामों में वर्गीकृत करके प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत तालिका में उनकी छन्द संख्या इस प्रकार है—

विश्राम	नाम	दोहा	सोरठा	चौपाई		कुल छन्द
प्रथम	उत्पत्ति मंगलाचरण	८	८	१२	—	२८
द्वितीय	अनुग्रह बचन	३०	२८	७७	—	१३५
तृतीय	सत्संग वचन	२०	१८	३८	—	७६
चतुर्थ	नररूप अवस्था	२२	२२	५०	—	९४
पंचम	अनुभव	२४	२४	४६	—	९४
षष्ठ	उत्तम स्वभाव	२४	२६	६४	—	११४
सप्तम	मध्यम स्वभाव	१४	१७	३४	—	६५
अष्टम	निकृष्ट स्वभाव	१२	१२	२८	—	५२
नवम्	नर का विवेक	२४	२४	६६	—	११४
दशम्	नर का उपदेश	३७	४०	१०६	—	१८३
एकादश	नर की श्रेष्ठता	२२	२२	५४	—	९८
द्वारश:	नर की प्रभुता	१४	१४	३२	—	६०
		२५१	२५५	६०७	—	१११३

ज्ञात हुआ है कि 'बुन्देली परिषद बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, में भी इन दोनों हस्तलेखों का एक संग्रह उपलब्ध है । कवि की उक्त कृतियां मेरे देखने में नहीं आई । उपर्युक्त परिचय केवल इस उद्देश्य से दिया जा रहा है कि इस काव्य पर शोध करने वाले को विद्यापीठ के हस्तलेख संग्रहालय में उपलब्ध इन कृतियों का आवश्यक परिचय मिल सके ।

●

— प्राध्यापक, एस० आर० के० महाविद्यालय, फिरोजाबाद, उ० प्र०

ये बेचारे घर के शब्द ....

● डा० हरगोविन्द सिंह

आदान- प्रदान बुरी बात नहीं है । पारस्परिक सहयोग से ही समाज का विकास होता है । आवश्यकतानुसार उपयोगी तत्त्व हम दूसरों से ग्रहण करें और बदले में उन्हें कुछ देने की क्षमता रखे— यह बराबरी का नाता है, जो दोनों पक्षों का गौरव अक्षुण्ण रखता है । किन्तु यदि ऐसी नौबत आ जाय कि हमारे घर के सदस्य तो मारे-मारे फिरें और उनके स्थान पर घुसपैठिये अपना अड्डा जमाकर गुलछर्रें उड़ायें, तो यह स्थिति न तो सुखद कही जा सकती है न ही सम्मानजनक । मनुष्यों के साथ ऐसा कहीं हुआ या नहीं, यह खोजबीन हमें यहां पर नहीं करनी है । हां, यह ध्यान अवश्य दिलाना है कि भारतीय शब्द-परिवार से साथ बहुत कुछ ऐसा ही घटित हुआ है । हमारे यहाँ की संस्कृत-प्राकृत-परम्परा के अनेक शब्द इसी प्रकार मानक हिन्दी से निर्वासित हो गये और सम्प्रति ये बेचारे दूर देहात की लोकभाषाओं में ही जीवन-यापन कर रहे हैं । कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत है :—

शुक भारत का प्रसिद्ध पक्षी है । इसके संस्कृत नाम के तदभव रूप 'सुग्गा' और 'सुआ' हुए । सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने काव्य में सुआ शब्द का प्रयोग किया था—

'सुआ भुआ सेंवर के आसां । (पदमावत८६।५)

परन्तु आजकल स्थिति दूसरी है । यदि कोई गद्य-लेखन अथवा सभ्य बोलचाल की हिन्दी में यह कहे कि 'हमने शुक पाला है' तो लोग कहेंगे— 'बड़ी पण्डिताई झाड़ता है !' और यदि कहा जाय कि 'हमने सुआ पाला है' तो इसे ग्राम्य प्रयोग घोषित करके नाक-भौं सिकोड़ी जाएगी । स्पष्ट है कि जहां शुक-परिवार के स्थान पर फारसी की तूती बोल रही है, वहाँ अब यही कहना उचित माना जाएगा- 'हमने तोता पाला है । '

यही हाल 'पारावत' का है, जिसका वंशज है 'परेवा' । कविवर बिहारीलाल ने लिखा था—

पटु पांखे भखु कांकरे, सपर परेई संग ।
सुखी परेवा पुहुमि में, एकै तुही विहंग ।।

परन्तु अब तो फारसी का 'कबूतर' आकाश में छा गया है । कितने व्यक्ति पसन्द करेंगे देहाती 'परेवा' और पण्डिताउ 'पारावत' को !

भारत के वस्त्र-उद्योग के दो महत्वपूर्ण यन्त्र रहे हैं— चरखा और रहंटा ।चरखा कपास से बिनौला अलग करता है और रहंटा के द्वारा सूत काता जाता है । बुन्देली में

ये दोनों यन्त्र अभी तक अपने सांगोपांग नाम-परिचय सहित जीवित हैं । सन्त कबीर ने कताई के लिए रहंटा का ही प्रयोग किया था —

" मन मेरो रहंटा, रसना पुरइया,
हरि की नाऊं लै-लै काति बहुरिया । "

केवल बुन्देली की बात नहीं ब्रज से लेकर बिहारक्षेत्र तक की जनपदीय शब्दावली में 'रहंटा' सुपरिचित शब्द है क्योंकि यह संस्कृत 'अरघट्टक' से बना है । परन्तु अब मानक हिन्दी में 'रहंटा' पूरी तरह समाप्त है और उसकी जगह "चरखा' ही बेधड़क चल रहा है ।

सिलाई करने वाला व्यक्ति हमारे शिक्षित समाज में दर्जी कहलाता है । परन्तु जब 'दर्जी' फारसी से नहीं आया था, तब क्या यहां कपड़े ही नहीं सिलते थे ? और यह धन्धा करनेवाला 'छिपी' या 'सिपी' कहलाता था । सन्त नामदेव छिपी या सिपी ही तो थे । उनकी स्वयं की वाणी इसका प्रमाण है—

'मन मेरी सुई, तन मेरा धागा । खेचर जी के चरण पर नामा सिपी लागा '

इन्हीं की चर्चा करते हुए ठाकुर कवि ने लिखा था—

'छिपिया को दूध-भात खीचरी हू करमा की, चक्करा रैदास जु चमार हू के खाये हैं।'

बुन्देली में अब भी दरजी को छिपी ही कहा जाता है । वस्तुतः 'छिपी' और 'सिपी' दोनों हिन्दी के अपने पारम्परिक शब्द हैं और वे संस्कृत 'शिल्पी' से निकले हैं ।

वस्त्र की चौड़ाई के लिए किसी समय भारत में संस्कृत का 'परिणाह' शब्द सुप्रचलित रहा होगा । लोक में उसी के बुन्देली 'पन्हा' तथा अवधी 'पनहा' रूप आज भी जीवित हैं । किन्तु परिनिष्ठित हिन्दी में इस अभिव्यक्ति के लिये अरबी का 'अर्ज' शब्द मान्य हो गया है । इसी प्रकार किनारी के लिए बुन्देली शब्द 'बाट' है, जो संस्कृत 'वर्त्मन्' से व्युत्पन्न है, जबकि 'किनारी' और 'किनारा' फारसी के 'कनारः' की देन हैं । इसी प्रकार हाथ की अंगुलियों तथा हथेली की रक्षा हेतु पहनने के लिए फारसी का 'दस्तानः' मान्य हुआ, बुन्देली का 'हंत्ती' नहीं, यद्यपि यह बेचारा संस्कृत 'हस्त्य' से बना है । आचार्य केशवदास ने लिखा था—

'चंपक दल दुति के गेंडुए ! मनहुं रूप के रूपक उए । '

इसी प्रकार जायसी ने भी कहा था—

'दुहुं दिसि गेंडुवा औ गलसुई । कांचे पाट भरी धुनि रुई ।।

(पदमावत २६१।६)

परन्तु बड़े दरबार में अरबी का 'मसनद' ऐसा जमा कि उसने बुन्देली, अवधी और ब्रजी के 'गेंडुआ' तथा बिहार क्षेत्र के 'गेरुआ' शब्द तो क्या उनके पूर्वज 'गेण्डुक' और

'गण्डोपधान' को भी पास नहीं फटकने दिया ।

शीतकाल में बुन्देलखण्ड के ग्रामवासी 'सुपेती' ओढ़ते हैं, किन्तु सभ्य सुशिक्षित समाज 'लिहाफ' और 'रजाई' का प्रयोग करता है । इनमें से 'लिहाफ' तो स्पष्टतः अरबी है और 'रजाई' की भी भारतीयता संदिग्ध है, परन्तु सुपेती के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है । 'प्राकृतशब्दमहार्णव' में 'सुप्पइत्तिय' को 'शीतहारक वस्त्रविशेष' कहा गया है । बुन्देली में इस समय प्रचलित 'सुपेती' इसी का रूपान्तर है । इसका कोई संस्कृत मूल भी रहा होगा । कुछ भी हो, यदि प्राकृत को 'सुप्पइत्तिय' शब्द उपलब्ध न होता तो लोगों को भ्रम हो सकता था कि शीतकाल में ओढ़ने के लिए हिन्दी-भाषियों के पूर्वजों के पास निज का कोई सक्षम सूती वस्त्र था भी या नहीं ! फिर जय हो सन्त जायसी और बाबा तुलसीदास जी, की जो अपने काव्य में 'सुपेती' के अस्तित्व की साक्षी छोड़ गये—

' सौर सुपेती आवै जूड़ी । मानहुं सेज हिवंचल बूड़ी । ' (पदमावत ३५०।४)

' सुभग सुरभि पय फेन समाना । कोमल कलित सुपेतीं नाना । '

(बालकांड ३५६।२)

संस्कृत की 'प्रोञ्छ्' क्रिया का अर्थ है पोंछना । जिस वस्त्र से शरीर पोंछने का काम लिया जाय वह हुआ 'अंगप्रोञ्छ' । बुन्देली आदि लोकभाषाओं में इसी को 'अंगौछा' कहा गया । बड़ा आकार होने पर 'अंगौछा' और छोटा आकार होने पर 'अंगौछी' । पर हिन्दी के मानक क्षेत्र में अंगोछा या अंगौछीं नहीं, विलायती देन (अंगरेजी और पुर्तगाली से आगत) 'तौलिया' का ही प्रयोग हो रहा है ।

'मोम' शब्द फारसी से आया परन्तु बुन्देली के पास अपना शब्द है—

'मैन' जो संस्कृत 'मदन से व्युत्पन्न है । तुलसीदास जी की 'वैराग्यसंदीपनी, में इसकी चर्चा मिलती है— 'तुलसी ताहि कठोर मन सुनत मैन होइ जाइ ।' 'ऐसा प्रतीत होता है कि मोम का रोगन चढ़ाकर जो मोमजामा तैयार किया जाता था, उसकी बुन्देली संज्ञा 'मैनकप्पड़' (सं० मदन+कर्पट) थी । आजकल मजबूत कपड़े पर कुछ अच्छे किस्म का रोगन चढ़ाकर तिरपाल बनते हैं । अर्थ विस्तार प्रक्रिया से इन्हें भी बुन्देली में मैनकप्पड़ ही कहा जाता है । अंगरेजी 'टारपोलिन' से व्युत्पन्न 'तिरपाल' को तुलना में 'मैनकप्पड़' तो घर का ही शब्द मानो जायगा ।

गोस्वामी जी 'विनयपत्रिका' (पद सं० १११) में लिख गये हैं—

'शून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे ।'

'सूरसागर' में गोपियों का भी कथन है—

'तुम्हरे बोलनि कौन पतीजै ज्यौं भुस पर की भीति ।'

बुन्देलखण्ड और बिहार के जनपदीय क्षेत्र में आज भी संस्कृत 'भित्ति' से व्युत्पन्न

'भीत' शब्द ही प्रचलित है, जबकि मान्य क्षेत्र में फारसी से आगत 'दीवार' खड़ी हो गयी और संस्कृत की उक्त देन का प्रवेश निषिद्ध बन गया ।

भवन-निर्माण में चिनाई के लिए ईंट-पत्थर आदि की जो तह लगायी जाती है, उसे फारसी में रद्द, कहते हैं । सभ्य समाज ने इसी का हलका-सा रूपान्तर 'रद्दा' मान्य कर दिया । बुन्देली में इसकी संज्ञा 'चयो' है, जो संस्कृत 'चय' का रूपान्तर है । व्रज-भाषा में भी ईंटों की पर्त 'चयो' कहलाती है । नगर के भवनों में अब ताक तो समाप्त-प्राय है किन्तु 'ताक पर रखना' मुहावरा भाषा में सुप्रचलित है; रहना भी चाहिये । निवेदन मात्र इतना है कि 'ताक' शब्द अरबी से आया और संस्कृत 'आलय' से निकले 'आरो' 'अरवा' जैसे शब्दों को हटाकर प्रतिष्ठित हुआ । आचार्य केशवदास को 'आरो' शब्द के बहुवचन का प्रयोग करने में कोई संकोच नहीं हुआ था—

''आरे मणि-खचित खरे, बासन बहुबास भरे,

राखित गृह-गृह अनेक, मनहु मैन साजे ।''

मकान का गन्दा पानी जिस नाली से निकलता है, उसे बुन्देली और व्रज भाषा में 'पनारो' कहते हैं । तुलसी और सूर की कृतियों में इसके उल्लेख मिलते हैं । 'सूरसागर' (पद सं० ३८५४) में गोपियों की यह उक्ति प्रसिद्ध है—

'कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे ।'

किन्तु आगे चलकर हिन्दी में यह 'पनारा' शब्द नहीं टिक पाया । इसकी जगह फारसी के 'नाबदान' ने ले ली ।

दो पहाड़ों के बीच के संकीर्ण मार्ग के लिए बुन्देली शब्द है- 'खंदिया और खंदा, ये सम्भवतः संस्कृत 'स्कन्ध' से व्युत्पन्न हैं, क्योंकि स्कन्ध का एक अर्थ मार्ग भी मिलता है । किन्तु फारसी शब्दों के जत्थे के साथ 'दर्रः' ने भी इस तरह दरेरा देकर प्रवेश किया कि उनके समक्ष खंदा और खंदिया सरीखे शब्दों को जान बचाना मुश्किल हो गया ।

मानक हिन्दी में औजार शब्द अरब से आया, परन्तु इसके पूर्व यहां संस्कृत 'उपस्कर' और प्राकृत 'उवक्खर' शब्द प्रयुक्त होते थे । उपस्कर लकड़ी के होते थे और लोहे के भी । लोहे के औजारों की संज्ञा 'लौह उपस्कर' थी । बुन्देली में इसी का रूपान्तर **'लोखर'** या 'ल्वाखर' प्रचलित है । बुन्देलखण्ड की ही बात नहीं, व्रज से लेकर बिहार तक के लोकजीवन का यह सुपरिचित शब्द है । अरबी 'औजार' के मुका-बले यह 'लोखर' या 'ल्वाखर' जितना खरा उतरता है, उतना अन्य कोई शब्द शायद ही मिले ।

किसी प्राणी की पहचान के लिए उसकी शरीर-रचना का सूचक बहुत ही बढ़िया शब्द बुन्देली में है— **'बन्नक'** जो संस्कृत 'वर्णक' से बना है । परन्तु हिन्दी में मान्यता इसे नहीं, अरबी के 'हुल्यः' से बने हुये 'हुलिया' को प्राप्त है । अरबी के 'खुमार' से

हिन्दी में खुमारी का प्रचलन हो गया परन्तु बुन्देली में इसके लिए अपना शब्द है— 'मधवाय'। इसका सम्बन्ध स्पष्टतः संस्कृत 'मधु' से है। बदनाम करने के अर्थ में हिन्दी का पुराना मुहावरा है— 'नाम धरना'। सन्त सुन्दरदास ने लिखा है—

"अपनी न जाने गति संतन को नाम धरें
सुन्दर कहत देखो ऐसो मूढ़ नर हैं।"

यह इस तथ्य का सूचक है कि 'बदनामी' के प्रचलन से पूर्व हिन्दी का आना कोई विशिष्ट शब्द अवश्य रहा होगा, किन्तु वह जनपदीय क्षेत्र में ही पड़ा रह गया। बुन्देली का 'नौधरई' इसका प्रमाण है।

बाबू वृन्दावनलाल वर्मा से एक बार किसी सज्जन ने प्रश्न किया था कि आप अपनी कृतियों में बुन्देलखण्डी शब्दों का प्रयोग क्यों करते हैं? इस पर वर्मा जी ने उत्तर दिया था— 'मैं प्रचलित शब्दों के पक्ष में हूँ क्योंकि ये साधारण जनता के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।' प्रश्नकर्ता से उन्होंने पूछा कि 'गुंजाइश' के स्थान पर आप हिन्दी का कौन—सा शब्द उपयुक्त समझते हैं? जब कोई उत्तर न मिल सका, तब उन्होंने बताया कि बुन्देली शब्द 'उकास' संस्कृत के 'अवकाश' का अपभ्रंश होते हुये भी 'गुंजाइश' का अर्थ भली भाँति व्यक्त करता है। (कृपया देखें वर्मा जी 'ओ अपनी कहानी' पृष्ठ २३६)

घोड़े के के मुख में लगायी जानेवाली 'लगाम' (फारसी शब्द) के लिए ब्रज से लेकर बिहार तक के जनपदीय क्षेत्र में 'मोहरी' शब्द प्रचलित है। मानक हिन्दी में इसे स्थान नहीं मिल सका तो न सही, परन्तु है यह विशुद्ध भारतीय,-संस्कृत के 'मुखरी' शब्द की सन्तान।

किसी सम्पन्न व्यक्ति का वह स्थायी प्रतिनिधि जो मालिक की ओर से कार्य के संचालन अथवा उसकी देखरेख के लिए नियुक्त किया गया हो, बुन्देली में सहना कहलाता है। इसी को साहनी भी कहा जाता रहा है। 'रामचरितमानस' में आया है—

"भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥"

(बालकांड ६८३।३)

'सहना' और 'सहानी' संस्कृत 'साधनिक के परिवर्तित रूप हैं। किन्तु फारसी के 'गुमाश्ता' अरबी के 'मुख्तार' और आगे चलकर अंगरेजी के एजेंट' शब्द ने ऐसा जोर मारा कि 'सहना' देहाती घोषित कर दिया गया और पक्की भाषा बोलनेवाले बड़े लोगों के यहां से उसकी सेवाएं समाप्त हो गयीं।

किसी बात की जो सार्वजनिक घोषणा टिमटिमी बजाकर की जाती है उसके लिए आज अरबी से आगत 'मुनादी' का उद्घोष चल रहा है, परन्तु बुन्देलखण्ड में

संस्कृत दुन्दुभि से व्युत्पन्न 'डौंडी' का ही प्राधान्य है! व्रजक्षेत्र भी इससे अपरिचित नहीं है। सूरसागर के पद सं० ४२७० में इसका बहुत बढ़िया प्रयोग हुआ है—

"लौंड़ी की डौंड़ी जग बाजी, बढ़यां स्याम अनुराग।"

'वसूल करना' क्रिया का सम्बन्ध अरबी के 'वुसूली शब्द से है। इसके लिए संस्कृत में 'उद्ग्रह' शब्द प्रचलित था, जिससे बुन्देली की 'उघावो' क्रिया निर्मित हुई है। इसी से बुन्देलखण्ड में लगान अथवा 'लैण्ड रेवेन्यू' को 'उघाई' कहा जाता है। इसे उच्चारण भेद से कहीं–कहीं 'उगाही' (सं० उद्ग्राहित, प्रा० उग्गाहिअ) भी कहते है। भूषण कवि की 'शिवा बावनी' में वसूली के स्थान पर उगाहना क्रिया का प्रयोग मिलता है—

"गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हे
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।"

मानक हिन्दी में अरबी का विशेषण 'खाली' स्वीकृत होने पर 'खाली करना' क्रिया के रूप में सुप्रचलित हो गया। बुन्देली में इसका बहुत सरल सटीक समानार्थक वर्तमान है— 'रिचैबो'। संस्कृत 'रिक्त' से बने हुए 'रीतो' तथा 'रीचों' विशेषण यहां चलते हैं और उन्हीं से नामिक क्रिया 'रिचैबो' या 'रितैबो' का निर्माण हो गया। इसी प्रकार 'निशानेबाज' के लिए बुन्देली के पास बड़ा ही सरल–संक्षिप्त शब्द है– 'घला'। प्राकृत भाषा में संस्कृत 'क्षिप्' का धात्वादेश 'घल्ल' हुआ। इसी से बुंदेली की 'घालबो' क्रिया बनी है। लाल कवि के 'छत्रप्रकाश' में इसी का प्रयोग हुआ है—

"घाउ एड़धारिन पै घाले।"

जो अस्त्र घालने में कुशल हो वह कहलाया 'घला'। वस्तुतः 'घालबो ऐसी क्रिया है, जो विशिष्ट अर्थ रखती है। बुन्देली में अस्त्र घाला जाता है और अस्त्र चलाया जाता है, जबकि मानक हिन्दी में दोनों के लिए चलाना क्रिया ही प्रयुक्त होती है।

'काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर' एक लोकोक्ति है, जिसका प्रयोग 'शिवराज–भूषण' में इस प्रकार हुआ है—

"ये अब सूबहु आवैं सिवा पर काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर।"

इस लोकोक्ति में प्रयुक्त 'कलींदा' शब्द संस्कृत 'कालिन्द' का तद्भव रूप है। किन्तु अब इसकी व्याख्या करते हुये बताना पड़ता है कि कलीदा माने तरबूज, क्योंकि मान्य समाज में इसी फारसी शब्द का बोलबाला है। कुछ भी हो, बुन्देली में तो यहां का निजी शब्द 'कलींदो' आज भी प्रचलित है और मजे की बात यह है कि इसे महा–राष्ट्र में 'कलगड' गुजरात में 'कलिंगर' और कन्नड में 'कल्लिगडि' कहा जाता है। (कृपया देखें 'भाषा' त्रैमासिक के मार्च, ६३ अंक में श्री विद्याभूषण अग्रवाल का शब्दों की यात्रा' शीर्षक लेख।)

यों तो हिन्दी में सम्प्रति 'नाश्ता' और 'जलपान' दोनों प्रचलित हैं, परन्तु मध्ययुग में फारसी 'नाश्ता' बड़े लोगों द्वारा इतना अधिक अपनाया गया कि प्रयोग का बहुमत आज भी उसी के पक्ष में है। और 'कलेवा' या 'कलेऊ'? इसे तो अब सभ्य समाज में कोई पूछनेवाला नहीं मिलेगा। यह सब समय का फेर नहीं तो और क्या है? अन्यथा तुलसीदास जी के प्रभु श्री रामचन्द्र 'कलेऊ' ही तो करते थे। 'गीतावली' (बालकाण्ड, पद सं० ३६) इसका प्रमाण है—

"मनभावतो कलेऊ कीजै। तुलसिदास कहँ जूठनि दीजै॥"

संभ्रान्त समुदाय से उपेक्षित होने पर भी 'कलेवा' या 'कलेऊ' हमारे जनपदीय क्षेत्र को परम प्रिय है क्योंकि यह संस्कृत के 'कल्यवर्त' का ही सरल-सुग्राह्य रूप है। ग्रामों में हिन्दू विवाह-संस्कार के समय कुंवर कलेवा की परम्परा है और रामकलेवा के गीतों का प्रचलन अभी समाप्त नहीं हुआ।

भोजन के प्रसंग में 'अचार' का प्रयोग होता है, परन्तु यह भी फारसी की ही देन है। बुन्देली में तो 'धानों' या 'अथानों' चलता है, जो संस्कृत 'सन्धान' से सम्बन्धित है। 'कवितावली' में संधानो शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

"पान पकवान विधि नाना के, संधानो सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।"

पकी हुई सब्जी का पानीवाला अंश बुन्देली में 'रसा' और मांसाहार का इस प्रकार का अंश 'सुरवा' कहलाता है। 'रसा' का सम्बन्ध संस्कृत के 'रस' तथा 'सुरवा' का फारसी के 'शोरवा' शब्द से है। यह 'रसा' बुन्देली के अतिरिक्त हिन्दी क्षेत्र की अन्य जनपदीय भाषाओं में भी दूर-दूर तक प्रचलित है, परन्तु मानक भाषा ने इसकी तुलना में अभी तक 'शोरवा' ही अधिक पसन्द किया है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि फारसी का 'नमक' भी इतना प्रधान हो गया कि उसके समक्ष संस्कृत के 'लवण' से बने 'नोंन' या 'नून' का कोई महत्व नहीं रहा।

संस्कृत प्राघुण से व्युत्पन्न 'पाहुनों' बुन्देली का प्रिय शब्द है। किसी समय 'पदमावत' के सूफी कवि ने इसका प्रयोग इस प्रकार किया था—

"एहि नैहर पाहुन के लेखी।"– ३८०/६

आगे चलकर हिन्दी में फारसी का 'मेहमान' बनकर जम गया और 'पाहुना' बेदखल कर दिया गया। वैसे अब धीरे-धीरे 'अतिथि' की मान्यता भी बढ़ रही है, परन्तु 'पाहुने' के लिए जो कपाट एक बार बन्द हुए सो अभी तक बन्द ही है।

वास्तविकता यह है कि शासक वर्ग के रहन-सहन और बोलचाल का प्रभाव बड़ा जबरदस्त होता है। इस देश के राजकाज में किसी समय जो सम्मान संस्कृत का था, वह मुगलकाल में फारसी का हो गया। अपना स्तर जनसामान्य की तुलना में ऊंचा

सिद्ध करने के प्रयास में कर्मचारी तथा शिक्षित वर्ग के व्यक्ति अधिक से अधिक फारसी अरबी शब्दों का प्रयोग करने लगे। इसके पश्चात् ऐसा ही आकर्षण अंग्रेजी शब्दों के प्रति बढ़ा। परिवार का स्तर ऊंचा रखने के लिए आज 'मम्मी-डैडी' ने 'माता जी' और पिता जी को निष्कासित कर दिया है, धर्मपत्नी का स्थान 'वाइफ' ने ले लिया और 'अंकल' तथा 'आंटी' के समक्ष 'चाचा-चाची' की स्थिति अनुसूचित जैसी हो गयी। कम से कम बोलचाल की हिन्दी का हाल तो इस समय यही है।

उक्त विवेचन का यह आशय कदापि नहीं है कि विदेशी शब्दों से हमें परहेज है और उन्हें मानक हिन्दी से निकाल बाहर करने की प्रेरणा दी जा रही है। कहीं से भी आये हों, जो शब्द हमारी भाषा में रम गये और जो बोलने के साथ ही लिखने में भी जम गये हैं, उन्हें अलग करना अब न तो उचित है, न ही संभव। इस युग की समृद्ध भाषा अंग्रेजी ने शब्द चारों ओर से समेटे हैं! भारतीय महाद्वीप से भी सैकड़ों शब्द ग्रहण किये हैं। किन्तु इस क्रिया में उसने अपने घर के शब्दों को बट्टेखाते में नहीं डाला; प्रसंग के अनुसार उपयुक्त अभिव्यक्ति के लिए सभी का प्रयोग होता है।

ऐसा भी नहीं कि विदेशी शब्दों का प्रवेश हमारी लोकभाषाओं में न हुआ हो। हुआ है, परन्तु अपने अंचल में भारत-भूमि की परम्परागत निधि अब भी ये इतनी अधिक मात्रा में संजोये हुए हैं कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनकी शब्द सम्पदा का जितना अधिक अनुशीलन किया जाय, ये उतनी ही सारगर्भित, प्राणवान और उपयोगी सिद्ध होती हैं। आखिर लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के सांस्कृतिक, सामाजिक और व्यावसायिक सम्पर्क का मूल माध्यम ये लोकभाषाएं ही तो हैं। शिक्षितम्मन्य समुदाय उन्हें हेय मानता रहा—यही दुर्भाग्य का विषय है।

सामन्ती युग में राज-मान्यता ही सब कुछ थी, किन्तु लोकतन्त्र में लोक की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लोकशक्ति का समुचित विकास सामंजस्य और सदुपयोग ही लोकतंत्र को सुदृढ़ बना सकता है।

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। उसे समृद्ध करने वाली शब्द-सम्पदा लोकजीवन के बीच धूलि-धूसरित पड़ी है। भारत की मध्यदेशीय भोजपुरी, अवधी, बुन्देली, ब्रजी, कन्नौजी, कौरवी आदि लोकभाषाएं राष्ट्रभाषा रूपी वृक्ष के लिए धात्री जड़ों के समान हैं। क्या इन्हें उपेक्षित, हेय और उपहास की वस्तु बनाये रखना वृक्ष की जीवनी शक्ति के साथ खिलवाड़ नहीं है?

— हिन्दी विभाग, ब्रह्मानन्द महाविद्यालय, राठ
(हमीरपुर) उ० प्र०

ईसुर फागे बोलत जा रये
मोसें तो लिखवा रये

● ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश'

श्री लक्ष्मणदास कुंजबिहारी सराफ धर्मशाला न्याय छतरपुर के सहयोग से अकादमी द्वारा आयोजित तुलसी जयन्ती समारोह पर इस वर्ष सर्वश्री मादक जी चित्रकूट, पं. गोवर्द्धन त्रिपाठी बीदा, रवीन्द्र शर्मा जालौन, ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश' झांसी और गोविन्द यदुवंशी पन्ना सम्मानित कवि थे, जिनमें से प्रकाश जी का परिचय, आत्मकथ्य एवं रचनाएं हमें प्राप्त हुई हैं, जो इस स्तम्भ में प्रस्तुत हैं।

— सम्पादक

परिचय : जन्म– २३ फरवरी, १९३३ ई० । पिता श्री महेश्वर दयाल सक्सेना और माता श्रीमती नन्नी बाई। शिक्षा– १९५२ ई० में इण्टरमीजिएट परीक्षा। १९५४ ई० से काव्य–रचना प्रारम्भ एवं १९५९ ई० से कवि सम्मेलनों का दौर और रचनाओं का प्रकाशन १९६२ ई० से लेखों में गति। अभिरुचि-संगीत। १९६४ई० में बुन्देलखण्डीय लोकगीत एवं लोकनृत्य-मण्डल, ललितपुर की स्थापना प्रकाशन–रणभेरी, देश की पुकार एवं स्फुट कविताएं– लेख। सम्प्रति- १०७/१ पुरानी नझाई, झांसी– २८४००२, उ० प्र०।

आत्मकथ्य : ईसुर फागें बोलव जा रये, मोसें तो लिखवा रये।
का कैसी होतइ कवताई ओरई सें समजा रये।
बुन्देली के मुंगा मोवी जबरइ सें बिनवा रये।
कयं 'प्रकाश' जो तन है उनको ई में वेइ समा रये ॥१॥
फागें लिखत–लिखत तन हारे, मन नइं बनतइ मारे।
लै रये जनम इअइ धरती पै बेर–बेर फगवारे।
ढूंड़त फिरत रजउ कों अपनी राधा के मतवारे।
आतम रूप 'प्रकाश' बोइ है लिखन लगे अबढारे ॥२॥

●

अंजुरीभर फागें : घूंटभर गीत

सबकों अध्यावम में ढारो, जैसें बनों समारो।
रामायन जू लिखी जुगत सें जा तो मनें बिचारो।

सूदी सहज बांच लइ सबनें नेंक न रओ अंदियारो।
कर 'प्रकाश' तुलसी नें जग में ऐन करो उजियारो ॥१॥
तुलसी-तुलसी भये बिरछन में, अगुआ हते गुनन में।
लिखना ऐसे रुच कें रच गये जोत जरा गये मन में।
धरम–करम खां करो उजागर अपनी रामायन में।
कयं 'प्रकाश' के मरम बता गये राम लला रावन में ॥२॥
घुंघट नांवचार कों डारें, डारें कछू उघारें।
नैनन समुद हिलोरें लै रओ मद की नांव समारें।
झोंका चलै हवा को हलको दिखतीं कजर कगारें।
कयं 'प्रकाश' मन के पंछी कों अब तो उतइं उतारें ॥३॥
ऐसी मोटी काजर डारें लख हिरनी दृग हारें।
सेंदुर भरें बिलात मांग में सगुन सुहाग समारें।
रोरी की टीका लग दें रओ सूरज कों ललकारें।
कयं 'प्रकाश' कितउं जावे कों ठाड़ीं हतीं दुआरें ॥४॥
धैला माटी कों ना मानें, छीहें नइं जो ठानें।
उतरत धोकें पार कुआ की अदफर निगबो जानें।
जब देखी कुड़री पै बैठे पानू में मन सानें।
कयं 'प्रकाश' फूटनें जिदना खपरा धूरा छानें ॥५॥

चम्पा सी मुइंयां पै चन्दन सें लेप दओ
रोरी को राज दओ पसार
बिंध नें बगरा दओ सिंगार।
चांदी सें मांग भरी
चंदा की किरन डरी
पूनों पै सरद की समार।
बारन में जुही बसी
लट नागन लगै गसी
लगतइ ज्यों बेतवा कछार।
पलकन के दियरन में
पुतरिन की बतियन में
सैनन की चिकनइ दइ डार।
अलगोजा सी बोलन
कलियन कैसी खोलन
ओंठन पै फोर दये अनार।

●

बीला नदी-घाटी के चित्रित शैलगृह

● कृष्णकुमार त्रिपाठी

विगत् वर्षों में मध्यप्रदेश की नर्मदा, बेतवा, चंबल, तथा सोन आदि नदियों की उपत्यकाओं में बहुसंख्यक चित्रित शैलगृह प्रकाश में आये हैं, जिन पर विविध सुरुचिपूर्ण दृश्यों का अंकन है। कुछ में भाला, बाण आदि आयुधों से पशु-पक्षियों के शिकार करने का अंकन है। कहीं जानवरों का युद्ध है, तो कहीं पारस्परिक युद्ध करते हुए मानव-योद्धाओं का अंकन है। पशुओं के ऊपर सवारी करते हुए या उन्हें ले जाते हुए मानव दिखाये गये हैं। कुछ चित्रों में सामूहिक नृत्य, घरेलू जीवन तथा आखेटक जीवन के विभिन्न दृश्यों का रोचक अंकन है। शिकार तथा रक्षा के लिए भाला, बरछा, बाण, धनुष, चक्र, तलवार, ढाल आदि आयुधों का चित्रण देखने को मिलता है।[1]

उपरोक्त शैल चित्रों के माध्यम से मध्यप्रदेश के विविध नदी-तटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले आदिम जनों के जीवन पर मनोरंजक प्रकाश पड़ा है। चित्रकला के प्रारंभिक रूप तथा उनके क्रमिक विकास के अध्ययन में ये चित्र सहायक सिद्ध हुए हैं, जिन्हें कंदराओं में निवास करने वाले आदिमजनों ने बनाया।

सागर नगर से पूर्वोत्तर लगभग ६३ किलोमीटर की दूरी पर शाहगढ़ के समीप बीला नदी के वर्तमान बांध से लेकर लगभग ३ किलोमीटर बीला नदी तटवर्ती क्षेत्र के बांये पार्श्व में (पन्द्रह) से अधिक चित्रित शैलगृहों की खोज की गई है। इन शैलाश्रयों में आदि मानवों द्वारा निर्मित विविध मनोरंजक दृश्यों का सुरुचिपूर्ण अंकन देखने को मिलता है। सागर जिला के अन्य स्थलों-बरयावली भापेल: बरौदा आवचन्द तथा कतिपय अन्य स्थलों के अतिरिक्त बीला नदी तटवर्ती शैल-चित्रों की खोज विशेष महत्व की है। नदी के तटवर्ती क्षेत्र के सर्वेक्षण से पाषाणकालीन उपकरणों की उपलब्धि उपादेय है।

सागर जिला में शैलगृहीन चित्रों की एक दीर्घकालिक परम्परा विद्यमान रही है, जो उत्तर पाषाणकाल से प्रारम्भ होकर ऐतिहासिक काल तक प्रचलित रही। यह चित्रकला अपने प्रारम्भिक स्वरूप में कलात्मकता की उच्च भावना को लेकर प्रस्फुटित हुई, जो क्रमशः नवपाषाणकाल-ताम्रपाषाणकाल में भी जारी रही। प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में भी इस क्षेत्र में कलात्मक चित्रों का निर्माण हुआ। ऐतिहासिक काल में यद्यपि चित्रकला में गिरावट आई, तथापि मानव-जीवन के विविध कार्यकलापों को चित्रित करने में इस काल का कलाकार सक्षम हुआ। इन्हीं चित्रों के आधार पर सागर जिला प्रागैतिहासिक जन-जीवन की झांकी सुलभ हो सकी।[2]

---

(१) बाजपेयी, कृष्णदत्त : मध्य प्रदेश का पुरातत्व, पुरातत्व एवं संग्रहालय म० प्र० भोपाल १९७०-पृ०-२,३.

(२) पाण्डेय, श्यामकुमार : सागर जिले की शैलगृहीन चित्रकला, मध्यभारती, अंक-१४-१६ (१९७१-७३) पृ०३३-४४, सागर विश्वविद्यालय,

संक्षेप में विवेच्य क्षेत्र से ज्ञात शैलाश्रयों का विवरण इस प्रकार है :—

शैलाश्रय एक :— इस शैलाश्रय में मोटे ब्रुश तथा गेरुये रंग से निर्मित एक मानवाकृति का चित्रण है, जिसके दाहिने हाथ में तलवार तथा बायें हाथ में ढाल है। अंगरखे का एक छोर नीचे लटक रहा है। आकृति का भीतरी भाग खड़ी तथा आड़ी मोटी रेखाओं से भरा गया है। सिर पर खड़े बालों का प्रदर्शन है।

शैलाश्रय दो :— नृत्यरत मानव समूह, जिनके अंकन में दो रंगों का समायोजन है-(१) गेरुआ तथा (२) गहरा लाल। गेरुये रंग से एक बैलगाड़ी का चित्रण है, जिसके दो पहिये तथा गाड़ी का मध्य भाग स्पष्ट है। इसके नीचे १२ पुरुष आकृतियां एक-दूसरे से हाथ मिलाए समूह- नृत्य करते हुये प्रदर्शित हैं। इसके साथ ही दो अन्य व्यक्ति एक दूसरे से हाथ मिलाये (संभवतः युद्ध करते हुए) दिखाये गये हैं। यह एक छोटी गुफा है, जिसके कारण अधिक चित्रों का अंकन नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि गेरुआ रंग कत्थई रंग के ऊपर आक्षिप्त है। उपरोक्त चित्रणों में वस्त्र का सामान्य प्रदर्शन और निर्माण शैली इसे ऐतिहासिक युगीन सिद्ध करती है। इन चित्रों के निर्माण में मोटे ब्रुश का प्रयोग हुआ है। कतिपय आकृतियों को अंगरखा (उत्तरीय) धारण किये दिखाया गया है तथा उनके सिर के ऊपर पगड़ी है।

शैलाश्रय तीन :— इसमें गेरुये रंग से अंकित एक बारहसिंहा, जिसके सामने हरिण खड़ा है, सुरुचिपूर्ण ढंग से अंकित है। इन चित्रों के ऊपर एक उड़ता हुआ पक्षी संभवतः (गरुड़) का मनोरम चित्रण है। पक्षी की गर्दन ऊंची उठी हुई है। उसके सामने अन्य हरिणों का समूह तथा ऊपर कांटेदार रेखा है। इस शैलगृह की अन्य आकृतियां अस्पष्ट हैं।

शैलाश्रय चार :— नृत्यरत मुद्रा में मानवाकृति गहरे लाल रंग से निर्मित है। इस चित्र के निर्माण में मोटे ब्रुश का प्रयोग मिलता है।

शैलाश्रय पांच:-मानवाकृतियों के साथ हरिणों का प्रदर्शन है। इस शैलाश्रय के चित्रणों में कैलशियम का अभाव है, जिसे पेंटिना कहते हैं। पेंटिना के नीचे अन्य चित्रों का अंकन दिखाई देता है, जो गहरे लाल रंग से चित्रित है। इनके निर्माण में भी मोटे ब्रुश का प्रयोग किया गया है, जिसमें मुख्यतया विविध पशु-आकृतियों का अंकन है। एक हरिण का भी प्रदर्शन है, जिसका अंकन गुफा के ऊपरी छोर पर बाहर निकले हुये भाग पर है। गुफा के मध्य भाग में हरिण का सुन्दर अंकन है, जो विविध चित्रणों से युक्त बारहसिंहों से आवृत है। विवेच्य चित्रण एक अन्य पशु-आकृति से आक्षिप्त है। इसके समीप ही एक अन्य मानव आकृति का अंकन है, जिसके सिरोभाग पर दंड के समान

आयुद्ध अस्पष्ट है। इन चित्रों के नीचे एक श्वान (कुत्ता) अथवा शृगाल आकृति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके कानों का प्रदर्शन उभारयुत (उन्नत) है तथा शरीर का मध्य भाग अधिक लम्बा है। इसकी लम्बी दुम नीचे तक लटकती दिखाई गई है।

शैलाश्रय छः :— हरिण का सुन्दर चित्रण है। मुख का अग्र भाग गेरुये रंग से भरा गया है तथा शरीर के मध्य भाग में रेखांकन है। इसके नीचे एक अन्य पशु आकृति है। निर्माण कला उपरोक्त चित्र के समान है।

शैलाश्रय सात :- गेरुये रंग से निर्मित विविध रेखाओं युक्त चारपाई का सुन्दर अंकन है। समीप ही एक अन्य चारपाई के ऊपर एक पुरुष बैठा प्रदर्शित है। इस चित्र में भी पहले चित्रों जैसी समता है। परन्तु वर्ण्य-विषय में अंतर है। पशुओं की आकृतियों के साथ मानवाकृतियों के अंकन से इस ओर संकेत मिलता है कि मानव तथा आटविक पशुओं में सामंजस्य स्थापित हो गया था। इसके अतिरिक्त अन्य पशु–आकृतियां तथा आरेखनयुक्त चित्रण देखने को मिले हैं।

इस गुफा के चित्रणों में जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वह है एक पुरुष तथा नारी का युग्म–चित्रण, जो प्रेमालाप करते हुये प्रदर्शित है। विवेच्य चित्रण में गहरे लाल रंग का प्रयोग है।

शैलाश्रय आठ :— इस गुफा के चित्रों में हरिण तथा नृत्यरत पुरुष आकृतियों का अंकन है गहरे लाल रंग से निर्मित इन चित्रों में मोटे ब्रुश का प्रयोग किया गया है। मानव के आखेटक-जीवन की झांकी का मनोरम चित्रण है। नीचे छड़ीनुमा (यष्टिमानव) मानवाकृतियां तथा हरिणों का अंकन है। एक पुरुष आकृति के सामने खड़ा हरिण प्रदर्शित है। ऊपर दो पुरुष आकृतियों के सामने चक्राकार अंकन है। एक अन्य मानव आकृति का मनोरंजक अंकन है।

शैलाश्रय नौ :— इस गुफा के चित्रों का अंकन गहरे लाल रंग का है। एक मानवाकृति का भी अंकन है, जो धनुष के ऊपर बाण चढ़ाकर धनुष की प्रत्यंचा खींच रहा है। उसके सामने एक अन्य मानव धराशायी पड़ा है। संभवतः धनुषधारी पुरुष द्वारा भूमि में पड़े हुए पुरुष के वध करने का भाव प्रदर्शित किया गया है। दूसरे चित्र में हरिण का अंकन है, जिसके शरीर की आंतरिक संरचना विशेष प्रकार की है। उसका मध्य भाग दो अलग–अलग भागों में विभक्त है। नीचे का भाग रेखाओं द्वारा चोकोर बनाया गया है तथा ऊपर का भाग रिक्त छोड़ दिया गया है।

इस शैलाश्रय में कतिपय अन्य चित्रण हैं जो दो प्रकार के रंगों में है, पहला कत्थई तथा दूसरा गहरा लाल। एक मानवाकृति, जिसके दाहिने हाथ में ढाल तथा बाँए हाथ में तलवार है। उसके सिर के ऊपर बालों को खड़ी रेखाओं से चित्रित किया गया है। नीचे के भाग में रेखाओं सहित तीन चक्र हैं। इस गुफा में चित्रित हरिणों का समूह उल्लेखनीय है।

शैलाश्रय दस :— छड़ीनुमा मानवाकृति, जो पशु–समूह से आवृत है। उसके दाहिने पार्श्व में अश्व (घोड़ा) का चित्र है। नीचे की पंक्ति में दोनों हाथ ऊपर उठाये मानवाकृति तथा दो पशुओं का अंकन है, जो इस पुरुष के समक्ष खड़े हैं। इसके नीचे के भाग में तीन मानव आकृतियां हैं; जिनमें एक पुरुष को एक हाथ में तलवार लिए ऊपर हाथ उठाकर प्रहार करते हुये दिखाया गया है। इसके दूसरे हाथ में ढाल है। पार्श्व वाला मानव दौड़ता हुआ दिखाया गया है। इसके बाल खड़ी रेखाओं से अंकित हैं। इस चित्र के नीचे एक छोटी आकृति है जिसके दोनों हाथ ऊपर की ओर उठे हैं। इस गुफा के अन्य चित्रणों में नृत्यरत पुरुषों का अंकन उल्लेखनीय है।

शैलाश्रय ग्यारह :— इस गुफा में अंकित चित्रों का वर्ण्य विषय स्पष्ट नहीं है। नृत्यरत मानव तथा विविध पशुओं का चित्रण है। योद्धागण तलवार तथा ढाल अपने हाथों में लिए हैं। घोड़ों पर सवार पुरुषों का अंकन महत्वपूर्ण है, जिनके हाथों में तलवार तथा ढाल है। कुछ योद्धागण तलवार लटकाए हैं। कान, आंख, वस्त्र आदि का कलात्मक अंकन द्रष्टव्य है। पुरुष आकृतियों के बालों को खड़ी रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

शैलाश्रय बारह :— इस गुफा में उन्नत लाट वाले पशुओं का चित्रण आड़ी–खड़ी रेखाओं का है। अश्वारोही अश्वों की पीठ पर खड़े दिखाये गये हैं। अन्य आकृतियां अस्पष्ट हैं।

शैलाश्रय तेरह :— इस गुफा के चित्र अब स्पष्ट नहीं हैं, परन्तु गहरे लाल रंग से चित्रण किया गया प्रतीत होता है।

शैलाश्रय चौदह :— पशु–समूह तथा मानवाकृतियों का सुन्दर चित्रण है। कतिपय चित्र लाल रंग की रेखाओं से निर्मित हैं। नीचे के स्तर के चित्र आक्षिप्त हैं एवं गहरे लाल रंग के हैं। एक मानव आकृति कई पशुओं के समूह के मध्य घिरा हुआ है, जो आदिमजनों के पशु–प्रेम तथा पशुपालन की भावाभिव्यक्ति करता है। प्रत्येक पशुआकृति का चित्रण एक–दूसरी आकृति से भिन्न है। एक अन्य चित्र में नृत्यरत मानव समूह का सुन्दर अंकन है, जो आपस में एक दूसरे का हाथ पकड़े हैं।

शैलाश्रय पन्द्रह :— यह गुफा बीला नदी तट से लगभग तीन कि० मी० पूर्व की ओर है। यहां गहरे लाल रंग से विविध पशुओं तथा मानव आकृतियों का चित्रण है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि बीला नदी घाटी के उक्त तथा कतिपय अन्य शैलाश्रयों में लोक–जीवन के विविध रोचक चित्रों का अंकन तत्कालीन कलाकारों ने किया, जिससे उनकी कला–प्रियता पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है।

● विविध पशुओं के मध्य आकृत मानवाकृतियां ●

उक्त चित्रणों के वर्ण्य-विषयों के अध्ययन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं–

(१) इन चित्रों में कत्थई, गहरा लाल, साधारण लाल आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। कत्थई रंग वाले चित्र पूर्व ऐतिहासिक तथा गहरे लाल, साधारण लाल रंगों से निर्मित चित्र ऐतिहासिक काल के प्रतीत होते हैं।

(२) चित्रों के निर्माण में मोटे तथा पतले ब्रुशों का प्रयोग किया गया है।

(३) कतिपय आकृतियां लाल रंग से भरावयुक्त हैं।

(४) प्रथम समूह में मानवाकृतियां ही देखने को मिलती हैं, जबकि गुफा संख्या सात में मानव आकृतियों के साथ-साथ पशु-आकृतियों का चित्रण इस ओर संकेत देता है कि तत्कालीन मानवों की अभिरुचि पशु-पालन में जाग्रत हो गई थी।

(५) शिकारी जीवन के साथ-साथ मानव पशु-पालन तथा सवारी के काम में घोड़े आदि पशुओं का उपयोग करता था।

(६) समूह-नृत्य तत्कालीन मांगलिक अवसरों पर सौहार्द भावना की ओर संकेत करता है। मानव-जीवन से सम्बन्धित अन्य सामाजिक भावनाओं तथा लोकरंजक दृश्यों की प्रधानता है।

(७) चक्र तथा सूर्य आदि प्रतीकों के अंकन से आध्यात्मिक विकास की अभिव्यक्ति होती है।

●

— पुरातत्व विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर

" बैठै तौ उठै नईं, परै तौ टरै नईं "

● हरप्रसाद शर्मा

बात भौत दिनन की है। अपने जा बुन्देलखण्ड में चन्देलन को राज हतो। चन्देलन के राज में पिरजा सुख चैन सें रउत ती। सेर और बुकरियां एकई घाट पै पानीं पियत ते। राजा की मरजी के बिना न चिरई चौंकत ती और ना बाज फरकत तो।

सो ऊ राजा कें एक बेटी हती। भौतऊ खूबसूरत। कै जैसें दोज कैसो चन्दा, जैसें दिवारी कैसो दिया, जैसें होरी जैसी फाग और मुलायमता में नैनूं जैसो लौंदा। और पवित्रता में गंगा जू कैसी धार। बेटी जब कभऊं राजा के संगे दरबार में जातती तौ सबरो दरबार उनके रूप और गुनन की प्रभा सें जगमगा सो जाततो। अच्छे सें अच्छे खूबसूरत राजपूत उनसें ब्याओ रचावे के लानें ललचाव रऊत ते, पै बेटी उनकी तरफ हेरत लो न तीं। जब कभऊं बेटी जू दरबार में बोलत तीं, तो बीना कैसे तार झनझनान लगत ते।

एक दिना दरबारियन ने राजा सें बिनती करी कै महाराज, बेटी जू अब सियानी हो गईं, सो उनको ब्याव-काज करबो उचित हुइये।" दरबारियन की बातें सुनकें राजा नें अपनी बेटी की तरफ देखो। सो बेटी के गालन पै लज्जा की लाली खेल गई। अकेमें बेटी नें तुरतई चतुराई को पर्दा करकें कई कै 'कक्का जू, अपुन खों दरबारियन की बात मानबो तो उचित हैई। पै मोरी ब्याओ करवे की एक सर्त है। जोनों बा सर्त पूरी न हुइये, मैं अपनो ब्याओ न कराहों। "

बेटी जू के मुख सें सर्त को नाम सुनतनई राजा और सबई दरबारी भौंचक्के से रै गये। उननें बेटी सें अरज करी कै 'बेटी जू, अपुन अपनी सर्त बतावो। हम सब अपुन की सर्त पूरी करवे में कछू कोर कसर न उठा राखबी। "

तब बेटी नें सकुचात-सकुचात अपनी सर्त बताई कै " कक्का जू, मैं ऐसे वर सें ब्याओ करहों, जो चाहे गरीब हो चाहे अमीर, चाहे लूलो होय चाहे लंगड़ो, चाहे बहरो-पै बौ बैठकें उठबो न जानत होय। "

बेटी जू की जा अनोखी सर्त सुनतनई दरबारिअन के माथे झुक गये। उनकी समझ में नइं आई कै बेटी जू की जा अजूबी सर्त को का मतलब होत। अकेलें राजा ने अपनी बेटी की बात बड़े मतलब की समझ कें तुरईत राजघराने के पुरोहित और खवास खों बुलाओ और उनखों एक चिट्ठी देकें कई- "तुम देसन-देसन घूम फिरकें कौनऊं ऐसे बरजोग पुरुष को पतो लगाइयो, जो बैठकें उठबो न जानत होय। फिर जितईं तुम्हें ऐसो पुरुष मिल जाबे, उतईं बेटी जू को ब्याओ पक्को करवे के लाने फल्दान को नारियल धर आइयो। "

राजा की आज्ञा सुनकें पुरोहित और खबास देसन-देसन के राजन लौ गये और अपनी बिन्तवारी करी कै "जो राजकुमार बैठकें उठबो न जानत होय, बाके संगे हम अपनी राजकुमारी को फल्दान करबे आये हैं।" जौ कऊत कऊत बे जितै जितै जाबें, उन्हें नाहीं को जबाब लग जाबै। राजा लोग कयें कै "जो अजीब सर्त तुमाई राजकुमारी ने लगा दई। भला ऐसो को हुइये जो बैठकें उठबो न जानत होय।" ऐसेंई घूमत-फिरत और जोई जुबाब पाऊत-पाऊत पुरोहित और खबास खों महीनन बीत गये और उन्हें कौनऊं राजकुमार न मिलो।

आखिर में निरास होकें बे घर खों लौटत-लौटत अपनी सरहद के आखिरी राजा के दरबार में गये। राजा साहब ने राजकुमारी की जा निराली सर्त सुनकें अपने दरबारियन खों सुनाई और बेऊ जा सर्त की नामंजूरी दै बैठे। उनके पास उनई को राजकुमार सोऊ बैठो तो! सो बानें अपने पिताजू सें अरज करी कै अपने राज सें आज लौ कोऊ निरास होकें नइं लौटो। जे पुरेहित जू का कऊत जैहें कै फलां राजा के दरबार सें हम निरास लौट आये। सो आप राजकुमारी की सर्त मान लेओ और आपकी जो अनुमत होय तो मैं राजकुमारी सें ब्याओ कर सकत। अकेलें ....।"

राजकुमार की बात सुनकें पैलें तो राजा सकुचाने, फिर अपने पुत्र की बुद्धमानी पै भरोसो करकें पूंछ बैठे- बेटा, हम तुमाये कहबे सें हामीं तौ भरें देन पै तुम हमाई हंसी न उड़वाइयो और फिर अकेले.... कहकें तुम काये रुक गये? हमें पैलें अकेलें को मतलब बताव।"

तब कुंअर नें राजा सें कई कै हामीं भरवे के पैले आपखों सोई जई कागज में लिखनें परै कै हमाये कुंअर बो बेटी की सर्त पूरी करबे के लानें तैयार हैं, अकेलें वे ऊ राजकुमारी सें ब्याव करें जो **परकें टरबो न जानत होय**। जो राजकुमारी खों हमाई जा सर्त मंजूर होवै तौ अपनी हांमी दैकें अपने पिताजू सें फल्दान पठवा देवें।

राजा के कुंअर की हामीं लैंके पुरोहित और खबास खुसी-खुसी अपने राजा के राज खों लौट चले। राजा के लिंगा लौट के पुरोहित नें बताओ कैं "महाराज, हम देसन-देसन घूमे। अकेलें वेटी जू की सर्त पूरी करबो वारो हमे कौनऊं राजकुमार न मिलो। आखिर में निरास होकें जैसई हम अपनें राज के पड़ोसी राजा के राज में गये और उन्हें अपनी वेटी जू की सर्त सुनाई तो सर्त सुनकें राजा तो चुप्प रैगये पै उनके कुंअर नें वेटी जू की सर्त वौ मान लई, अकेलें उननें अपनी तरफसें ऊ एक सर्त धर दई कै वे ऐसी नारी खों अपनी अर्द्धांगिनी बनाहैं जौन परकें टरबो नइं जानत होय। ना मानों तौ अपुन जा कागज खों बांच लेव। जा में लिखो है कै मै ऐसी नारी सें ब्याव करहों जौन परकें टरबो नईं जानत होय।"

जब राजा नें जौ सर्त अपनी बेटी खों सुनाई तौ वे सरमा कें मुस्क्या परीं। बे

मनईंमन खूब खुसी भईं। फिर उननें अपने पिता जू सें कई कै मैं जा सर्त पूरो कर सकत।

फिर का हती, अपनी बेटी की हांमी सुनकें राजा ने तुरतईं पंडित सें महूरत पूंछ कें खबास के जरिये संदेसो पठवा दओ कै राजा अपने कुंअर की बारात लैकें फलां तिथि खों आजावें। और फिर दोऊ राजन के महलन में ब्याव की तैयारी होंन लगी। गावो बजाबो होन लगो और मंगल गान उठन लगे।

अब जैसेंईं बा तिथि आई बैसेंईं राजा अपने कुंअर खों दूल्हा बनाकें पूरे फौज-फाटे के संगे चल परे। अपने समधी के राज में उनको खूब स्वागत-सत्कार भओ। बरात की अगवानी भई, पौन्छक बटी और तनक देर में भांवरन की तैयारी होन लगी।

मड़वा तरें राजकुमार और राजकुमारी दूल्हा दुलैया बनकें पटा पै बैठ गये और सिरी गनेस को पूजन होकें भांवरें परन लगीं। अब जैसेंईं तीन भांवरें पर चुकीं, बैसेंई कन्या पक्ष को पुरोहित ठांड़ो हो गओ और बोलो कै 'नैंक रुक जाव पंडित जू। अपुन दोऊ जनन खों मालूम है कै ब्याव होवे के लानें दूल्हा और दुल्हैन की तरफ सें कछू सर्तें रक्खीं गईं तीं। पैलें उनको खुलासा हो जावै, तब आंगे की भांवरें पारीं जैहें। फिर बानें कुंअर में पूंछी कै कुंअर जू, पैलें अपुन बतावें कै वेटी जू ने कौन सी सर्त रक्खी ती और अपुन बाखों कैसें पूरी कर सकत?"

जापै सिंह सपूत राजकुमार विनीत बनकें ठांड़े हो गये। वे बोले- "स्यानन के बीच में जादा बोलबौ ठीक नइयाँ। पै अपनी बुद्धि माफिक मैं जौ समझोतो कै राजकुमारी जू ने जा सर्त रक्खी ती कै बे ऐसो बर चाऊत तीं जो बैठकें उठबो न जानत होय जा सर्त में राजकुमारी जू की जा अभिलाषा छिपी ती सें हमाओ वर इतनो विद्वान इतनौ बुद्धिमान, शीलवान, शक्तिवान और इतनौ रूपवान होवै कै बौ जौनऊ सभा में बैठ जावै, बाखों कोऊ कौनऊ मुकाबले में हरा न सकै। विद्वान सें विद्वान ऊसें सास्त्रार्थ करवे में हार कें उठ जावें पै बाखों कोऊ हरा कें उठा न पावै और सब जनें बाकी वाह वाही करत बाखों घेरे रयें। सो हमाई समझ में तौ राजकुमारी जू की मन्सा रूप, गुन, बुद्धि और विद्या सें भरौपूरो वर की हती। राजकुमारी जू जब चाय हमें अजमा लेंय!"

अब पुरोहित नें राजकुमारी जू सें पूंछी कै 'काये बेटी जू' का तुमाई सर्त जोई हती कै कछू और? ई पै राजकुमारी नें हामीं में अपनो सिर हिला दओ! मड़वा के नेंचें बैठे सबई जनें राजकुमार की बुद्धि की सराहना करकें वाह वाह कर उठे।

अब राजकुमार के पुरोहित नें ठांड़े होकें पूंछी 'तौ अब राजकुमारी जू बतावें कै हमाये राजकुमार की कैसी सर्त हती?"

ईपै राजकुमारी लज्जा उर सकोच सें सिमिट कें ठाड़ी हो गईं। मड़वा के नेंचें बैठे बड़े बूढ़न की विचार करकें वे सिहर उठीं। उनके गालन पै लज्जा की गुलाबी

छा गई। वे मनाऊंन लगीं कै धरती फटै और वे ऊमें समां जावें। अकेलें फिर ने हिम्मत करकें सकुचात–सकुचात बोलीं- " मैं इन राजपुत्र की सर्त सें जा समभौती कै राजकुमार ऐसी अर्धांगिनी चाउत हैं जो घर के कामकाज में इतनीं चतुर होय कै बा जब घर को कामकाज निपटाकें रात में इनके पास जावै तब वाके कोनऊं कामकाज अधूरे न रये होवें। ऐसी नईं कै जब जे प्रेम सें विभोर होकें अपनी अर्द्धांगिनी से कछू कयें तो बा इन्हें रोक कें कओन लगे कै नैंक रुक जाव, हम तिजोरी को तारो लगा आवें। अरे महलन के ड्योढ़ीवान खों ब्यारी तो दइअई नइयां। ए, बौ दूध की बेला तो उगरोई रैगओ। सो हमाई समभ में तो जे राजकुमार सबई तरां सें ऐसी चतुर घरनी की चाहना करत ते कै बा जब इनके ऐंगर रात में जावै, तो बाके घर गृहिस्ती के कोनऊं काम अधूरे न रैं जावें सो मै इन राजपुत्र की जा सर्त पूरी करबे की छमता राखत हों ! "

राजकुमार राजकुमारी की बातें सुनकें मुस्क्या परे। उननें अपनी सर्त सही समभवे की हामीं भर दई। मड़वा के नेंवें बैठे सबई लोग, लुगाई, पंच और सगे सम्बन्धी बेटी की जा अनोखी समभदारी की बात सुनकें वाह–वाह करन लगे। अनेक किसोर उतईं बैठी किसोरियन की तरफ हेर कें मन्द–मन्द मुस्क्यान लगे। सजी मजाई नई नवेली किसोरिअन के गालन पै ललामी के ललचाये गुलाब के फूल खिल उठे। वे अपने-अपने पांवन के अंगूठन सें धरती कुरेदन लगीं और पुरोहित ने दूल्हा–दुलैया कीं आगें की भांवरें पारबो सुरू कर दओ।

सच्ची है दुल्हैन चाउत है कै बाये रूपवान और बुद्धवान दूला मिलै उर दूला चाउत है कै बाये सब तरीके सें सुन्दर और घर के कामकाज में चतुर घरनी मिलै।

सो अब पन्च भइयो समभ गये हुइयें कै बैठकें उठे नईं और परकें टरे नईं को का मतलब होव।

● — ए/२ टीचर्स कालोनी, अतर्रा, उ० प्र०

स्वारथ भरी गंधाय तलैया घर घर जौलों

● रामेश्वर गुरु

जौलों स्वारथ की जरत अंधाधुंध खलहान
कैसें हुहै देस को भला कभउं कल्यान
भला कभउं कल्यान भओ है वेमानी सें
कैसें निकरै तेल भला रेता–घानी सें
कह मुल्लू कविराय देस पनपै न तौलों
स्वारथ भरी गंधाय तलैया घर घर जौलों।

डूबो है अब देस में सबइ कछू अनमोल
उतरावे खों बची बस भेदभाव की खोल
भेदभाव की खोल देस कर दैहै पोलो
लगत जहर सी बात कहूं जो सांची बोलो
कह मुल्लू कविराय अरे रखवारो को है
मिल जुल रच्छा करो देस अपनो डूबो है।

● — जबलपुर, म० प्र०

व्यंग्य

एक चिठिया ठाकुर जू के नाम

● महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'

लिख रये आज तुमें जो अरजी पढ़ियो तुम ठाकुर जी
हियां बड़ो अंधेर मचो है फैलो है खुदगरजी
सांची बात लगै सब खोंईं सुनवे में वेतरजी
'मधुकर' हमखों तो तुम सोऊ लगन लगे हो फरजी।

फरजी हो गये हो ठाकुर जी पूजें तुमखों गरजी
वेगरजो दुनियां तो तुमसें नैंकउं कभऊं न लरजी
चुरै सबइ की न्यारी खिचरी बिना तुमाई मरजी
मरजी 'मधुकर' चला न पाये तब कैंसे ठाकुर जी।

ठाकुर जी तुम बने फिरत हो कछू न करत धरत हो
खुद तो खाओ दूध मलाई हमें अकाल करत हो
आद किलो को नाज करा दओ अब का प्रान हरत हो ?
'मधुकर' भूंके नंगे टेरें काये दुके फिरत हो ?

काये दुके फिरत हो सबसें तुमें ढूंड़ रये कब सें
ढूंड़त ढूंड़त हम तौ कँई जनम लै चुके कब सें
पुरखन के आंगें तौ आये बेर बेर मतलब सें
'मधुकर' अब ऊंसैं आ जाओ कै फिर टारौ भव सें
टारौ भव सें कुंवर कनैया टूटी मेरी नैया
का फिर मोखों आ पुचकारो समझ आंधरी गैया
गैया समझ चराओ कै फिर बुलवा लेव कसैया
'मधुकर' जा बेरां तौ मोय लग रओ सूर्ज तरैया।
लग रओ सूर्ज तरैया जैसो उड़त चिरैया जैसो
जग भर डंक मारबे ठांड़ो बर्र ततोया जैसो
करये स्वाद कौ जीवन हो गओ करई तुरैया जैसो
'मधुकर' दचका खाकें जी भओ टेड़े पैंया जैसो।
टेड़ें पैंया जैसो जी है जा नें गैल तजी है
गैलारिन के हांतन पांवन जाकी पीठ पुजी है
तानें टूटीं धुरा निकर गओ टायर धजी धजी है
'मधुकर' कै तौ दरसन देओ नँ तौ चिता सजी है।

— ३/१० पकौरिया महादेव, दतिया

तुलसी पुरस्कार

आदित्य 'ओम'

संवेदनशील सरकार की,
संवेदनहीनता का
इससे मार्मिक प्रमाण
और
क्या हो सकना है
कि सरकार द्वारा
नौटंकी गायकी को
तुलसी पुरस्कार से
सम्मानित किया गया है
और इस तरह जैसे-
नौटंकी को,
रामलीला का पर्याय
बना दिया गया है।

— १८८ जवाहर मार्ग, छतरपुर, म० प्र०

सितारों की हड़ताल

संतोष पटैरिया

एक बार सितारों ने कर दी हड़ताल
यमराज जी ने की उसकी जांच पड़ताल।
पूछा सितारों से, तुम्हारी क्या समस्या है ?
प्रतिदिन अनुपस्थित रहते, लगती अमावस्या है।
वयोवृद्ध सितारों ने कहा—
हमसे अच्छे तो मृत्युलोक के कर्मचारी मजे करते हैं
चिकित्सा प्रमाणपत्र देकर इधर-उधर फिरते हैं
एक हम हैं कि राकेश हमें अंधेरे में रखते हैं
क्योंकि उन्हें चाटुकार बादल ढके रहते हैं।
फिर एक जवान सितारा बोला-
हमारे होते रहते स्थानांतरण
हमारे लिए कोई नहीं करता अनशन आमरण।
संसार में तो भृष्टाचारियों को स्थानांतरित करने के लिए
लोग मर तक जाते हैं
किन्तु वे ध्रुवतारे की तरह वहीं अटल होकर
अंत तक मदमाते हैं।
विदेशी हमारे ग्रहों में कब्जा किये जाते हैं
जैसे किरायेदार मकान मालिक हुए जाते हैं।
शायद शशि ने उनसे सांठ-गांठ कर ली है
पद के स्थायित्व के लिए मतों की थैली भर ली है।
राकेश को प्रजा ने लगाया कलंक है
फिर भी आज कलाधर कहलाता मयंक है।
वह दिन दूर नहीं जब हमें घर से निकलना होगा
अपनी जाति, देश और नाम को बदलना होगा।
कभी हम भी इस जग को रोशनी देते थे
ये विषमता के बादल यहीं शरण लेते थे
आज वे हमारी छवि को मलिन करते हैं
और हम हैं कि उन्हें ही नमन करते हैं।

— डाक बंगला मार्ग, महोबा, उ० प्र०

ईसुरी पर आधृत एक कथा–चित्र

सुन्दरिया

— कुं॰ के॰ पी॰ सिंह

बुन्देलखण्ड का फाग शिरोमणि ईसुरी आज आज अपने गाँव बगौता में एक छोटे से खपरैल के अन्दर अकेला खटोली पर पड़ा हुआ अपने जीवन की अन्तिम सांसें भर रहा है ! चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है । बादल गड़गड़ा रहे हैं, बिजली लपलपा रही है, पानी की झड़ी लगी हुई है । मघा नक्षत्र विन्ध्याचल की तलहटी के खेतों को पानी से भर रहा है । यहाँ की कहावत को वह साकार कर रहा है– " मघा न बरसे भरे न खेत ।"

ईसुरी के पास इस समय कोई नहीं है । वह खटोली पर करवटें बदलता हुआ कांख रहा है । उसकी बेचैनी और छटपटाहट से खटोली कभी–कभी अपने आप हिल उठती है । उसके पल-पल मुश्किल से कट रहे हैं । आज उसके मन में पीड़ा है, वेदना है किस-लिए ? उसके प्राण–पखेरू क्यों नहीं निकल रहे हैं ? किसकी बाट जोह रहा है वह ? क्यों कष्ट झेल रहा है ? सचमुच यह उसके जीवन का अन्तिम समय है । अन्तिम समय भी कितना विचित्र होता है । उसे अपनी जीवन की सारी घटनायें एक–एक कर याद आ रही है, और जैसे ही वह बीते क्षण उसे याद आते हैं, उसका कष्ट मानो कम हो जाता है, वह किसी की याद में खो जाता है ।

वसंत का वह सुहावना दिन, जब वह जवान था, उसके मन में एक वासंती उमंग भरी थी । उसी के साथ–साथ रितुराज वसंत भी अपने यौवन की ओर बढ़ रहा था। आमों पर मौर टेसू के फूल, कोयल की कूक और बनों से लदी हुई घाटियों की श्रृंखलाएं दूर–दूर तक फैली हुई दिखाई दे रही थीं । युवा ईसुरी गांव के एक कुआ पर अलाप लगा रहा था—

" अब रितु आई वसंत बहारन, पान फूल फल डारन ।
बागन बनन बंगलन बेलन, बीथिन बगर बजारन ।
हारन दये पहारन पारन, धाम धवल जल धारन ।
तपसी कुटिल कंदरन जिनके, गई बैराग बिगारन ।
मौरे आम मंजरिन ऊपर, लगे भ्रमर गुंजारन ।
चहत अजीज प्रीति प्यारे की, हा–हा करत हजारन ।
ईसुर कईं अंत हैं जिनके, तिनें देत दुख दारन ।"

जब ईसुरी यह फाग गा रहे थे, तब पास ही के एक घर में कोई इसे सुनकर नाचे जा रही थी । वह इतनी तन्मय होकर नाची कि वह अपने को ही भूल गई । उसने

यह मधुर आवाज जीवन में पहली बार सुनी थी । उसे होश तब आया, जब फाग रुकी। फाग के रुकते ही उसके पैर अपने आप उस ओर चल पड़े । ईसुरी ने जब उसे पास में देखा, तो उसके रूप को देख उन्हें न रहा गया और अपने आप उनके बोल निकल पड़े–

" धनियां जा पतरी सी किनकी, ऐसे नाजुक जी की ।
ज्योंकी त्यों पान की गुटकन, पीक दिखात हिये की ।
अमरबेल सी लिपटत हुइहै, झिकत न हुइहै झौंकी ।
चउवर होत चलत करहइया, चाल चलत है नीकी ।
ईसुर स्याम सयानी दुलहन, सब बातन हो सीकी ।

इसी फाग के साथ–साथ वह थिरक रही थी । जैसे ही उसके पैर रुके ईसुरी ने पूंछा– " क्या नाम है तेरा । " ? उसने लजाते हुये कहा– "सुन्दरिया" ।
ईसुरी– " बड़ा सुन्दर नाम है तेरा और हां तू नाचती भी बहुत अच्छा है " ।
सुन्दरिया– आप कितना सुन्दर गाते हैं भला ऐसे गीतों पर किसके पैर न थिरक उठेंगे ।
ईसुरी– तुझे मेरी फागें पसन्द हैं ।
सुन्दरिया– बहुत पसन्द हैं । जी चाहता है, जब जब आप गावें, मैं नाचूं ।
ईसुरी– " अच्छी बात है, आज से ऐसा ही होगा " ।

घर में इसी समय ईसुरी ने करवट बदली, एक नजर द्वार पर डाली, कोई नहीं दिखा । उन्होंने करवट लेते हुये, एक ओर की पाटी को अपने हाथ से जोर से दबाया ऐसा करने से उसकी हाथ की नसें फूल पड़ीं और हाथ की पकड़ फिर धीरे–धीरे कमजोर पड़ती गई । वे फिर पुरानी यादों में खो गये :–

सुन्दरिया बहुत ही अच्छी नाचने वाली थी, लेकिन वह एक विवाहित स्त्री थी । ईसुरी कभी–कभी उससे लुक–छिप कर मिलने जाते और जब वह न मिल पाती, तो वे अलाप लगाकर कहते और वह जहां होती, नाच उठती ।

हमसें दूर तुमारी बखरी, हमें रजौ जा अखरी ।
हो आवे बतकाव परै ना, घरी भरे को छकरी ।
परत नहीं है द्वार सामने, खोर सोऊ है सकरी ।
बेरा–बखर नजर बरकाकें, कैसे लेबी तकरी ।
छिन आवे छिन जाये ईसुरी, भये जात हैं चकरी ॥

घर में वे कराहते हुये, खाट पर चित्त लेट गये । उनकी छाती ऊपर–नीचे हो रही थी । बेचैनी हो रही है उन्हें सांस लेने में । उनके फेफड़े अपनी पूरी ताकत लगाकर सांस खीचते हैं, किन्तु वह सांस जल्दी ही बाहर निकल पड़ती है और वे इस कारण घबड़ा उठते हैं । इसी घबड़ाहट के साथ वे किसी की याद में खो जाते हैं ।

एक बार मुन्दरिया उन्हें कुंआ पर मिली थी और उसने बड़े ही संकोच में ईसुरी से पूछा था– '' सच कहना, मैं तुम्हें कैसी लगती हूं ? '' ईसुरी ने उसकी ओर मुसकुराते हुये बड़े ध्यान से उसके गाल का हलका सा तिल देखा, और उसे देखते ही वे कह उठे थे और वह नाच पड़ी थी :–

तिलकी परन तिलन सें हलकी, बांय गाल पै झलकी ।
मानों धुई चन्द के ऊपर, बुन्दी जमुना जल की ।
मानों फूल गुलाब के ऊपर, उड़ बैठन भई अल की ।
कै गोविन्द गुराई देखें, पैठ गये कर छल की ।
जोके लगी ईसुरी जोकें, दिल के दाब कवल की ।।

घर में खाट पर ईसुरी को खांसी आई और कफ की गड़गड़ाहट के साथ उन्होंने थूक दिया । कुत्तों का भोंकना सुनाई पड़ने लगा, शायद आधी रात हुई है । ईसुरी फिर अपनी यादों में खो जाते हैं ।

एक बार मुन्दरिया तालाब से नहा कर चली आ रही थी । ईसुरी को देख वह जल्दी–जल्दी चल कर घर में घुस गई, और छत की मुंडेर पर बैठ बाल सुखाने लगी । ईसुरी ने उसे देखा और गा उठे :–

बिथुरे डरे केस बिन गोये, आज लाड़ली धोये ।
बूंदा चुवत नितंबन ऊपर, कम से गये निचोये ।
पसरे हैं सुम्मेर सिखर पै, काग पच्छ से सोय ।
मानो जलज मुक्त तारागन, स्याम पाट में पोये ।
ईसुर छवि देखी छाजे पै, चढ़ सुकुमारि सुहोये ।।

मुन्दरिया अपने थिरकते पैरों को ईसुरी की फाग पर रोक न पाती थी । वह तो ईसुरी की फागों की दिवानी बन गई थी ।

एक बार बादल जोर से कड़के । ईसुरी ने आँखें खोलीं । अपना एक हांथ माथे पर रख लिया । वे कुछ अपने-आप बुदबुदाए, जो अपने आप में अर्थहीन रहा । ईसुरी आंखें मिचमिचाते हुये फिर किसी की याद में खो गये । उन्हें बसंत के बाद फाग की होली याद आ गई । जब मुन्दरिया झूम–झूम के नाच रही थी और ईसुरी फागें गाये जा रहे थे–

ऐसी पिचकारी की धालन, कहां सीक लई लालन ।
जांगन बीच छियत छतियन लों, उचट लगी है गालन ।
अपुन फिरत रंग रस में भीजे, भिजें रहे वृज बालन ।
माधौ भये राधिका ईसुर, राधा बनी गुपालन ।।

पानी की मूसलाधार घर के अन्दर कई जगह से टपका दे रही है और ईसुरी कंपकंपी से हिल उठे, लेकिन उठने का उनमें साहस नहीं है । वह फिर किसी की याद में खो गये । सोचने लगे, जमीदार की बच्ची की शादी में मुन्दरिया कैसी सजधज कर आई थी नाचने को । मैंने उसे देखते ही फाग गाई थी और वह घुंघरुओं के साथ लचक पड़ी थी ।

'' जा दिन रजऊ पैरती गानों जियरा जात विरानों ।
सरमाला लल्लरी बिचौली, मोहन हरा सुहानों ।
बांह बरा बाजू बन्द सोहें, बैयन जौन उमानों ।
ईसुर देत बदन अति सोभा, अब चोली बंद तानों ।।

जागीरदार साहब ने मुन्दरिया को नाचने पर उसे पैंजना इनाम में दिये और मुन्दरिया ने उन्हें खुशी–खुशी तुरन्त पहिन लिया । वे सोचने लगे । इन्हीं पैंजनों को मैंने एक बार मुन्दरिया को गांव में पहिने हुये जाते देखा था । उसे चलते हुये देख ईसुरी से न रहा गया । वे गा उठे, वह नाँच पड़ी–

तोरे मधुर पैंजना बाजें, गोरे पगन बिराजें ।
नित उठ प्रात जात हैं जल्दी, आई तला से याजें ।
लुरक रहे मुखन के नीचें, छोड़त कड़ी अवाजें ।
जे सुर भरे हिये के भीतर, मन के बीचें राजें ।
ईसुर परन चहत काहू पै, भादों कैसी गाजें ।।

इसी समय कड़कड़ाती हुई कहीं पर गाज गिरी और फिर भयंकर सन्नाटा छा गया । ईसुरी ने ऊंह कहते हुये करवट ली और फिर किसी की याद में खो गये । मुन्दरिया के नाच पर जितने भी मनचले बाराती थे, सब के सब उसे पाने को उत्सुक हो रहे थे । जब ईसुरी ने देखा कि मेरी मुन्दरिया खतरे में न पड़ जाये, तब उन्होंने कितने अच्छे ढंग से मनचलों को भयभीत करने और उसे बचाने को फिर से एक फाग गाई–

'' हंस कें नजर छैल पै डारें, रहियो यार समारें ।
छुरियन मांग बगुरदन सिन्दुरा, भौंह बनी तरवारें ।
हेरन सैन तिपाला कैसी, जात करेजो फारें ।
तकतो लेव तरीछे करकें, कैइक घाल पुकारें ।
कहत ईसुरी बरके रहियो, जा है नार उतारें ।।

इस फाग ने उसकी मुन्दरिया को उस समय तो बचा लिया, लेकिन कुछ लोग इस जोड़े को दूर करना चाहते थे और उन्होंने मुन्दरिया के पति को उल्टा–सीधा भरना

शुरू कर दिया। मुन्दरिया ने अपने पति को बहुत समझाया कि हमारा नाता केवल कला तक ही सीमित है और कुछ नहीं। लेकिन उसने एक न मानी और उसे उनकी फाग पर नाचने को मना कर दिया।

लोग जलते थे क्योंकि जहां मुन्दरिया नाचने को जाती, वहीं ईसुरी फाग गाते, और जहां ईसुरी फाग गाने जाते, वहीं पर मुन्दरिया नाचने को जाती। इन दोनों को देखने सैकड़ों लोग रात-रात भर जमा होते रहते। दूसरी गाने व नाचने वाली को कोई देखने व सुनने नहीं जाता और यही ईर्षा का मुख्य कारण था।

अब ईसुरी की सांस जोर-जोर से चलने लगी और साथ ही साथ उन्हें घबड़ाहट हो रही है। बेचारे बेचैन है। हवा सांय-सांय करती हुई चल रही है। वे फिर विचारों में खो जाते हैं। लोगों ने उन्हें मुन्दरिया से दूर कर दिया था। अब मुन्दरिया को वे देख भी नहीं पाते थे। इसी कारण कवि हृदय जब अकेला होता तो सन्नाटे में कह उठता-

तुमखों खबर हमारी नैयाँ, मोह टोर दओ सैयाँ।
होवन में से निकरन लागी चुरियाँ छोड़ी बैयाँ।
सूको देह छिबुरिया हो गई, हो गये प्रान चलैयाँ।
जे पानिन अंखियाँ न सूकी, भर भर देत तरैयाँ!
सुरति कराव ईसुरी ऊओ, लाग-लाग कें पैयाँ॥

जोर की आंधी चली और घर के किवाड़ भड़भड़ा कर बन्द होकर फिर खुल गये। ईसुरी ने आंखें खोलीं, द्वार की ओर देखा और फिर उनकी आंखों से दो बूंद टपक पड़े। आंखें फिर बन्द हो गईं और वे किसी की याद में खो गये। ईसुरी मुन्दरिया को देखने की कोशिश करते, अपने दरवाजे पर खड़े रहकर बाट जोहते, परन्तु जब वह न दिखाई देती तो गा उठते-

भरलओ कितनी बेरा पानी, रजौ न आज दिखानी।
कै कोऊ हमखां अंतर पर गवो, बेरा बखत न जानी।
कै हम पीठ दिये बैठे रये, कै कड़गईं चिमानी।
कै तो हम से मोह छोड़ दयो, कै भई प्रीत पुरानी।
ईसुर चले कुंवा लौं गयेते, लेय लवन की खानी॥

मुन्दरिया उनकी फाग सुनती और घर के अन्दर बैठ कर रोती रहती। बेचारी क्या करती? उसका बस नहीं चलता था, वरना वह तो उसके हर बोल पर घुंघरू बजा देती। इधर मुन्दरिया दुखी थी और उधर ईसुरी। जब वे उसे कई दिनों तक न देख पाते, तो गाने लगते-

यारी बुरई होत बीमारी, करो कोऊ न यारी।
बिछुरन की पीरन के मारें, धीरी पर गई नारी।
जारन कैसी भोरी हो गई, देह साँवरी कारी।
घुरत भटा सो रहत करेजो, आग बिरह की भारी।
तुम तौ दूर बने रओ ईसुर, जा भई दसा हमारी।

बड़े जोरों से ईसुरी को खांसी आने लगी। खांसते खांसते उनका बुरा हाल हो रहा है। सांस फूल रही है। फेफड़े अपने में सांस नहीं रोक पा रहे हैं। उन्होंने उठने की कोशिश की, लेकिन न उठ सके फिर गिर पड़े उसी खाट पर। गिरते ही फिर किसी की याद में खो गये। लोगों ने मुन्दरिया से दूर जो कर दिया था। उन्हें लगता कि कोई मुन्दरिया से बातें करता होगा, उसके पास बैठता होगा। उसका नाच देखता होगा वे उन लोगों से चिढ़ते हुये, उन्हें ताड़ना देते हुये गा उठते-

जो कोऊ रजँ के जुबना गैहै, फूट गदेरी जैहै।
छूवन हूयँ हांथ में छिदना, गदियां रकत अनै है।
जो कोऊ लगै मुन्दर की चतियां रकत पनारे बैहै।
संगै उठे भला बरछी से, अनी अंग में सैहै।
ईसैं इनकी गली ईसुरी, चलबो हमैं मनें है॥

ईसुरी की बुरी हालत देखकर उनका बुरा चाहने वाले खुश होकर जब पूछते- "कहो ईसुरी, कैसे फिर रहे हो? तुमने अपनी कैसी दसा बना ली? ईसुरी उन्हें उत्तर देते- "अब रक्खा ही क्या है, सब बेकार है, और वह फिर गा उठते:-

बखरी बसियत हैं भारे की, दई पिया प्यारे की।
कच्ची भीत बनी माटी की, छाई फूस चारे की।
जी में नहीं किवार किवरियाँ, वे सांकर तारे की।
वे बंधेट डरी बेवाड़ा ऊसै दस दुआरे की।
ईसुर कहत करा लेव खाली हमें कौन वारे की॥

लोग सुनकर हंसते, लेकिन मुन्दरिया सुनकर सोचने लगती कि अब ईसुरी को अपने शरीर का मोह नहीं रहा। वह वैराग की ओर जा रहे हैं। मेरी बिछुड़न संसार से इनका मोह छीन लिया है। बेचारी क्या करती, मन मसोस कर रह जाती।

खऊं-खऊं-खऊं-खऊं की आवाज अब घर के बाहर तक सुनाई दे रही है। उन्होंने अपने दोनों हाथ दोनों पाटियों पर पटक दिये। क्यों, किसलिए? वह फिर यादों में खो गये। सोचने लगे- क्या मुन्दरिया अब नहीं आयेगी। उसे नहीं देख पाऊंगा।

हां, एक बार तो वह मौका पाकर चुपके से देखने आई थी। उस समय उसने डबडबाई आंखों से पूछा था– तुमने अपनी यह क्या दसा बना ली ईसुर।' ईसुरी ने सुन्दरिया को बड़े प्यार से देखा और फिर कुछ हंसते हुये से कहने लगे–

अंखियां जब काहू सें लगतीं, सब सब रातन जगतीं।
आधी रात सेज के ऊपर, पके खता सी दगतीं।
छिपती नहीं छिपाये तनकउ, उसनींदी सी भगतीं।
जां हो आवत जात यार हो, बेई गलियां तकतीं।
ऐसो हाल होत है ईसुर, पलक न पल भर दबतीं॥

सुन्दरिया फफक–फफक कर रो पड़ी थी। उसके पैर जमीन में गड़े से रह गये थे। इसी समय किसी के आने की आहट हुई थी और वहां से वह भाग गई थी। ईसुरी सुन्दरिया को भागता हुआ देखते रह गये थे।

पानी की झड़ी बन्द हुई। बादलों का लपकना बन्द हुआ। हवा सांय–सांय करती हुई धीरी पड़ी। इसी समय ईसुरी ने अपनी आंखें खोलीं। वे किसे देखना चाह रही हैं? इस समय उन्हें किसे देखना है? वह तो कवि है, जिन्होंने अपनी फागों से बुन्देल–भूमि को रस से भिगो कर रख दिया है। लेकिन उनके प्राण पखेरू क्यों पिंजरे में बन्द हैं।

ईसुरी ने कराहते हुये एक आह भरी, कुछ तड़पे। द्वार की तरफ टकटकी लगाये देखे जा रहे हैं, देखे जा रहे हैं। एकटक। इसी समय न जाने कहां से उनके गीतों की नर्तकी सुन्दरिया द्वार पर आकर खड़ी हो गई। उसे देखते ही उनकी बुझी आंखों में चमक आ गई। उनके होंठ हिले, कुछ बुदबुदाये- 'सुन्दरिया तू आ गई, आ पास आजा। मै, तेरी ही बाट जोह रहा था। पास आ, आजा ना। सुन्दरिया धीरे से पलंग के पास आकर खड़ी होकर बोली– "मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

ईसुरी– 'सुन्दरिया, जो मैं कहूं, वही करना, यह मेरा अन्तिम क्षण है। करेगी न मेरा कहना?'

सुन्दरिया– करूंगी, जरूर करूंगी। जो तुम कहो, वही करूंगी।

सुन्दरिया आवेश में कह वो गई, लेकिन वह सोचने लगी– "मैंनें यह क्या किया? क्यों वचन दे दिया? न जाने वे क्या मांग बैठें– और क्या मुझे देना ही होगा। जीवन के अन्तिम क्षणों में लोग न जाने क्या–क्या मांगते हैं, लेकिन हमारे ईसुरी तो केवल इतना ही मांग रहे हैं—

'सुन्दरिया नाच, अन्तिम बार दिल खोल कर नाचले और हां, नाचने में एक बात का ध्यान रखना कि नजर न्यारी न होने पावे।' सुन्दरिया ने कहा– 'जो आज्ञा, ऐसा

ही करूंगी तुम्हारी फागों के साथ यह नाचनेवाली भी लोगों को सदा याद रहेगी। ईसुरी ने तो नाच कहते हुये आलाप भरी–

जालेव सीताराम हमारी, चलती बिरियां प्यारी।
मिलकें बिछुरन को चाहत है, जितने हैं जिऊधारी।
ऐसी सदा निभाये रहियो, नजर होय न न्यारी।
ईसुर हंसा उड़न चहत है, झुक आई अंधियारी।

इसी फाग के साथ ईसुरी का हंसा नजर मिलाये हुये उड़ गया और सुन्दरिया के घुंघरू चीखते हुये रुक गये सदा–सदा के लिए।

●

— जिला चिकित्सालय के समीप, छतरपुर, म० प्र०

तुम्हारा आवाहन है गाँव

● धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

शहर, तुम छिपकली की तरह
क्यों लीलने में लगे हो गाँव ?
रमुआ के खेत अब नहीं सींचता रहंट
बिसनू के घर अब नहीं चलता कोल्हू
भौजी अब चकिया नहीं पीसती भुन्सारे
अपने घर ही ये कैसा अजनबीपन
और तो और बिन्नू भूलकर लोकगीत
रंग गई डिस्को के रंग ।
हो गया मशीनीकरण सभ्यता का
गांवों की लिपीपुती दीवारों पर लिख दिये राजनीतिक नारे
गुटों में बंध गया है सारा गांव
लगता है घायल हुआ समय का पांव ।
शहर, बाज आओ अपनी हरकतों से
मत उजाड़ो हमारी आस्था के घरौंदे
शोषण कर देहातों का
उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे तुम
'भारत गांवों का देश है' खद्दरधारियों का है कथन
मगर इन सभी ने बना रखी हैं कोठियां शहरों में
इतने पर भी उनकी शोषक जड़ें समाई हैं गांवों में ।
काट दो इनकी जड़ें
मिटा दो अस्तित्व इनका
तुम्हारा आवाहन है गाँव ।

● — बड़े मंदिर के पीछे, राठ (हमीरपुर), उ० प्र०

अंसुअन सींचे सुमन चढ़ा रये

● जितेन्द्र सिंह

आज जब हम अथाई पै पौंचे तो उतै बिलात जनें जुरे दिखाने। सब कोउ पन में दुखी औ सूरत में मलीन लग रओ तो। बतकाव की लर सोउ टूटत-जुरत-सी जान पर रई ती। कोउ कछु कावै तो कोउ कछु। जित्ती समाज जुरी दिखात ती, ऊमें बूड़े-बारे सब लख परत ते। औ उतै जित्ते मों, सो उत्ती बातैं। परमू माते भौतई दुखी होकें कै रये ते……… जैसो न कभऊं देखो न सुनो, ऐसो भओ इन्द्रा जू के संगै। अब बताओ, जब मेंड़ बारी खान लगी तो का होवै ? जिन्नें रखवारी के लानें राखो, उनईं ने जब गाली मार दई, तो हद्द हो गई भैया। ऐसे दुस्करमियन के लानें तो नरकउ नाक सकोरत। अरे नोंन खाये की लाज तो राखते। आज सकल जहान थू-थू कर रओ, जिनकी करतूत पै, वे भला अपनी बदनामी की तनकउ तो सोचते। ''

'' बदनामी की सोचते, तो जो सब होतोइ काए खों ? हरचंद भाउ ने अंगाएं कई- '' अब तो सौ बातन की एक बात जा दिखात हमैं, कै हम सब कोउ इन्द्रा जू के बिना अनाथ-से हो गये। हमईं-तुमईं का, पूरो देस ई ढोरी-कोरी को हो गओ। हमनें तो जौन समइया में जा खबर सुनी, सो गाज सी परी हमाये ऊपरै। पैलां तो हमैं बिस्वासई नईं भओ कै इन्द्रा जू नईं रईं, अकेलें होनीं खां को टार सकत ? बा तो होकें रात। ''

रमतोले दाऊ बोले- '' अब का कइये भैया ? इन्द्रा गांधी नें देस के लानें का नईं करो ? सकल संसार में भारत खां मान-पान दिववाओ, सब दुनियां के सामूं भारत को माथो उंचो राखो औ जनता की इत्ती सेवा करी ? ऊको फल हत्यारे दुष्टन नें जो दओ- कै उनकी जानइ लै लई। कैसो अधरम को करम करो। तनकउ भरम न रओ। ना जानें कैसो विचार मन में भरम गओ ? काये लाज औ सरम को तो अब नावंइ निसान पटा गओ। भैया भौतई लटो भओ। धिक्कार है ऐसे मानसन खां, जिननें विस्वास दैकें बिस दओ औ बिस्वास की हत्या करी। ''

'' अब जौन भओ सो भओ, पै जा देखो कै ऐसो काये भओ ? '' लल्लू दद्दा की जा बात सुनकें मुन्नुआ मनावर बाले तना ताव में बोले- '' काये भई इन्द्रा जू की हत्या? जा सोउ कछू लुकी-छुपी बात है का ? जिनकी आँखन में परदा परो, जे भारत देस के टुकड़ा-टुकड़ा देखो चाउत औ फुट्ट-फैल रओ चाउत ते, जा उनईं की करतूत आय। जब उनकी मंसा इन्द्रा जू के रात पूरी होत न दिखानी, सो उन्नें सोची कै ऐसो काम करें जीमें ना रावै बांस औ ना बजै बांसरी। ''

लल्लू दद्दा बोले- '' जोइ बात तो जंचो की है अब कै ऐसे घरफोरन की मंसा पूरी ना हो पावै। अब तो देस की एकता हर हालत में बनाए राखो चाइये। जौन बात के पछाऊं इन्द्रा जू के पिरान चले गये, बोई बात न रै पाई, तो धिक्कार है हमाये जीवे कों अब तो बा घड़ी आ गई कें देस की एकता बनी रावै, चाय हमाओ तन, धन सरबस

निछावर हो जाबें। फूट औ लूट के बीजा बेंबे वालन खाँ ऐसे में धूर न चटाई, तौ सब जा बात साँची मानौ कैं रेलई सी देखत रें जैहें बाद में। ईसें अब सब के मिल-जुल कैं रैबे में सार है। एक पै एक ग्यारा होत औ 'संघे सक्ती कलजुगे' कहाउत काये भाउ बोलौ हमनें कछू गलत कई होय तो ?''

लल्लू दद्दा की बात सुनके हरचंद भाऊ नें कई– "अपुन नें दद्दा सोरउ आना साँची कई, काए सें 'बंधी मुठी लाख की औ खुल गई सो खाख की हो जात।' जबलौं हम मिल–जुल कैं रैहें, तब लौ हमाई कोद कोउ निघा उठा कैं नईं हेर सकत। जहां फुट्– फैल भये, सो मिल गये धूरा में। जा बात अपुन चाय अपने घर, परवार गांव सें, औ चाय पूरे देस पै घटा कै देख लेव, बिल्कुल खरी उतरहै।"

हरचन्द भाऊ की ई बात पै परमू माते फिर बोले– "इत्ती बात हम सब जनें सुनत, समभत, गुनत औ करत जाँय, तौ फिर का कानें? हम तौ जा जानत कै इन्द्रागांधी नें एक रैबे की जौन बात कई, बा विकास की आस में सूधी सांची डगर आय। ई गली खां नईं छोड़नें, चाय जौन मसक्कत परें। काये सें सब पंचन खां मिल–जुल कें रानें, फिर खुसी अनंदी की का कानें। 'इन्द्रा जू के लानें हमाई साँची सिरधा जेई हुइये कै उनकी बताई उम्दा–उम्दा बातन खौं हम जानें मानें औ उनपै अमल करें।"

अब मन्टोले बब्बा बोले– "एक बात हम पूछत हैं माते कै कौनउ समाज के दो– चार बुरे मान्सन के लानें का पूरे समाज खाँ दोस औ दुख दओ जात? जौन कोउ की जान लेत, बो तौ आंधरो होत, काये कै उयै तौ अंगाऊं–पछाऊं को कछू लख नईं परत औ न नफा–नुकसान की हक्क– धक्क होत।"

परमू माते बोले– "बब्बा हम तौ एक बात जानत कै

जो तूको काँटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तूको तौ वे फूल हैं, वाको है तिरसूल॥

तवलों रतन दादा बोले– "बिल्कुल ठीक कई माते। हमनें तौ जा खबर सुनी कै बड़े–बड़े सहरन में पंजाबियन के घर–द्वार फूंक दये गए, माल-असबाब लूट लओ गओ औ कऊं–कऊं तौ उनकी जान लै लई। इन्द्रा जू की हत्या के बाद हमें लगत कै लोगन नें कछू तौ उन्माद में आकें औ कछू लुच्च्यायी में जे कुकरम करे। अब बताओ घर बारबो सामान लूटबो औ हाय–हत्या काँ की भलमन्साहत आय? ऐसे कामन सें तौ इन्द्रा गाँधी की आत्मा सुरग में किलपत हुइयै।"

"काये नईं दादा" प्यारे मराज नें कई– "औ फिर घर–द्वार औ धन–सम्पत कोउ की होवै, आखिर वा कहाई तौ अपने भारत देस की, कै नईं? सो नुकसान कोउ को होवै, बर्बादी देस की होत। आगी में बरबे के बाद बचो राख न हमाये काम की, न

हमाये काम की! औ जौन लूट–पाट कैं लै गये, सो वे का रईस हो जैयें, पराये ध्यारा के बूते? हम तौ गुसाईं जू की एक बात खरी मानत कैस

"धन पराव बिस तें बिस भारी'।"

अब परमू माते नें कई कै– "सब पंचन सें हमाई जेई अरदास है कै—

सौ बातन की एक बात।
सांची बात है साँची रात॥
मिलजुल रावैं धरम जात।
फिर न चलै बैरी की घात॥

औ भैयाहरौ इन्द्रा जू के लानें तौ हम इत्तोई कै सकत कै—

इन्द्रा तोरो जस हम गा रये।
अंसुअन सींचे सुमन चढ़ा रये॥

●

— कांति निकेतन, ग्योंड़ी, हमीरपुर, उ० प्र०

संक्रमणशीलता : एक प्रश्नचिन्ह

आलोच्य पुस्तक की सामग्री २२२ पृष्ठों में समेटी गई है; (भूमिका ३६ पृष्ठ, भाषा–विश्लेषण ४३ पृष्ठ, उदाहृत बुन्देली के नमूने ९१ पृष्ठ तथा बुन्देली–कोश ५२ पृष्ठ) । पुस्तक में ग्वालियर सम्भाग में बोली जाने वाली बुन्देली की संरचना का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । मानचित्रों में, भूमिका-भाग के उपशीर्षकों में तथा अन्यत्र स्थान-स्थान पर 'ग्वालियर' या 'ग्वालियरी' का प्रयोग ध्यान आकर्षित कर रहा है । ऐसा जान पड़ता है कि ग्वालियरी नाम से किये गए किसी पूर्वकृत कार्य को भाषावैज्ञानिक आकर्षक जामा पहिनाने के लिए 'ग्वालियरी' या ग्वालियर संभाग' के स्थान पर ब्रजभाषा में संक्रमणशील' पदबन्ध को स्थानापन्न कर दिया गया है । वस्तुत: संक्रमण क्षेत्र (यहां ग्वालियर) की बुन्देली का अध्ययन ही अभिप्रेत है, एवं वैज्ञानिक है; इस क्षेत्र में बुन्देली संक्रमित हो चुकी है, संक्रमणशीलता का अर्थ होगा, संक्रमण करती हुई, लेखक का संभवत: यह अभिप्राय नहीं है । (मेरी दृष्टि में तो यह क्षेत्र बुन्देली-भाषा-भाषी रहा है, १७–१८ वीं सदी में ब्रजभाषा ने इस क्षेत्र में संक्रमण किया है, साहित्य के माध्यम से तथा जातीय प्रव्रजन के कारण) स्वर्गीय डा० विश्वनाथ प्रसाद के मान्य सर्वेक्षण का उल्लेख लेखक ने भूमिका (च) में किया है; वहां भी क्षेत्र को ही आधार बनाया गया है ।

ब्रजभाषा में संक्रमणशीलता रखने वाली बुन्देली की अध्ययन- प्रक्रिया अनिवार्यत: भिन्न होनी चाहिये, उसमें ब्रजभाषा और बुन्देली की पारस्परिक संघर्षशीलता (Interference) दिखायी जाना चाहिए; अर्थात् किन-किन जातियों ने, किन-किन स्थानों पर, ब्रजभाषा-भाषियों से घिरे रहने पर भी बुन्देली को अपना लिया है तथा यह प्रवृत्ति किन, किन भाषायी-स्तरों (ध्वनि, व्याकरण एवं शब्दकोशीय) के माध्यम से प्रवेश पा रही है। वस्तुत: संक्रमणशीलता के मूल में पाई जाने वाली भाषायी टकराव की अध्ययन–प्रक्रिया से लेखक का न तो परिचय है और न उसका अभिप्रेत है । जैसा कि उल्लेख किया गया कि उसका अध्ययन ग्वालियर संभाग (जो कि पूर्व-अध्येताओं द्वारा एक संक्रमण क्षेत्र माना गया है) की बुन्देली का भाषा-विश्लेषण करना है ।

भाषावैज्ञानिकों का पारिभाषिक शब्द 'संरचना' भी विचारणीय है । संरचना के एक बहुमान्य शब्द 'ध्वनिग्राम' (Phoneme)का प्रयोग पुस्तक में दिखाई दिया है । उसकी भी अवधारणा भ्रमपूर्ण है । स्वर-ध्वनिग्रामों में तीन इ (अग्र ई, इ एवं मध्य इ) की चर्चा (पृष्ठ ३७) हुई है । भारत की किसी भाषा में (साथ ही हिन्दी एवं उसकी क्षेत्रीय उपभाषाओं में भी) तीन इ अर्थभेदक नहीं; अत: ध्वनिग्राम नहीं । पीतल और गन्ध के संयोजक से 'पितरांद' तथा गले और बंध से 'गिरमां' व्युत्पत्तिशास्त्र के अध्ययन का विषय तो हो सकता है; सांकालिक भाषा के सन्धि-नियमों के अन्तर्गत इन्हें समेटा

नहीं जा सकता । इस संरचना को तो किसी भाषा का व्याकरण भी स्वीकार नहीं करेगा वस्तुत: 'संरचना' शब्द को भी आचार्य महोदय ने भाषा विज्ञान की पुस्तकों से बिना उसकी विश्लेषण-प्रक्रिया को समझे हुये ही उठा लिया है ।

हिन्दी का एक प्रबुद्ध अध्यापक जो कि अपने अध्यापन-अनुभव के साथ हिन्दी व्याकरण की जानकारी प्राप्त करता चलता है, उसकी यह एक व्याकरणिक कृति है । लेखक ने इसमें अपनी सर्वेक्षण-प्राप्त सामग्री को एक बने-बनाये हिन्दी के व्याकरणिक ढांचे में ढालकर प्रस्तुत कर दिया है । प्रस्तुत कृति की उपादेयता उसके द्वारा संकलित एवं यथारूप में प्रस्तुत सामग्री में निहित है, समाजशास्त्र एवं भाषा-भूगोल के अध्येता इसका यथावश्यक उपयोग कर सकते हैं । ●

समीक्षक– डा० रा० प्र० अग्रवाल
क० मुं० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ,
आगरा वि० वि० आगरा

पुस्तक– ब्रजभाषा में संक्रमणशील बुन्देली की संरचना
लेखक– डा० कान्ति कुमार जैन । मूल्य– रु० ३५.००
प्रकाशक– बुन्देली पीठ, सागर विश्वविद्यालय, सागर

बुन्देली में नाटक के अभाव की पूर्ति

बुन्देली गद्य की एक समृद्ध परम्परा के बावजूद आधुनिक काल में उसका अभाव रहा है । मधुकर या लोकवार्ता में एक-दो लोक-कथाएं ऐतिहासिक उपन्यासों में किसी विशेष पत्र के संवादों, अथाई की बातों की बतकही आदि के उदाहरणों से आधुनिक बुन्देली गद्य की बानगी भर मिलती है । जबलपुर से प्रकाशित पत्रिका (संभवत: शारदा) का 'अपनी बानी' स्तम्भ और कुछ अन्य पत्रों एवं पत्रिकाओं में बुन्देली गद्य एक कोने में पड़ा उपेक्षित-सा लगता है ।इधर 'मामुलिया' पत्रिका ने एक नये अध्याय की शुरूआत की है, जिससे फिर से गद्य का प्रत्यावर्तन हुआ है । लोकनाट्यों पर चर्चा और आकाशवाणी से नाटकों के प्रसारण ने बुन्देली नाटकों के लेखन को नया उत्साह दिया, परिणाम स्वरूप अनेक नाटक लिखे गए, किन्तु उनका प्रकाशन नहीं हो सका । डा० बलभद्र तिवारी द्वारा सम्पादित 'बुन्देली का आधुनिक नाट्य साहित्य' इस अभाव की पूर्ति में अग्रणी है, अतएव उसका ऐतिहासिक महत्व असंदिग्ध है ।

इस संकलन में छ: नाटककारों के छ: नाटक संकलित किये गए हैं । चार नाटक और दो प्रहसन । इनमें तीन ऐतिहासिक, एक सामाजिक, एक हास्यप्रधान और एक अनुवाद है । सम्पादक ने विविधता की ओर ध्यान दिया है, जिससे बुन्देली के सभी तरह

के नाटकों को प्रतिनिधित्व मिल सके। सभी नाटकों की वस्तु में आधुनिकता का पुट है, पात्रों में आंचलिकता का रंग है और कथाओं का स्वाभाविक बुनाव है। और भी विशे- षताएं गिनाई जा सकती हैं, पर भाषा और रंगशिल्प की कुछ कमियां खटकती भी हैं। एक तो संवादों में अभीष्ट नाटकीयता नहीं है, दूसरे उनकी भाषा खड़ी बोली में आये वाक्यों का बुन्देली अनुवाद-सी प्रतीत होती है। सैनिकों, पीढ़ियों, पुण्य, सौभाग्य, बुन्देलों, रहसबाद आदि शब्दों से खड़ी बोली का प्रभाव प्रकट है। कभी- कभी चंदेलकालीन पात्र से 'बुन्देला', हरदौल के समय 'बखतबली' का गुणगान और चम्पतराय द्वारा 'रहसबाद' आदि के प्रयोग कालदोष के कारण एकदम चुभ जाते हैं। इन कमियों के होते हुये भी यह संकलन रोचक, विचारोत्तेजक, उपयोगी और बुन्देली चेतना से संपृक्त है।

बुन्देली का आधुनिक रंगमंच बहुत पिछड़ा हुआ है, उसे तीव्र गति से विक- सित करने की आवश्यकता है। ऐसे समय नाटकों के इस संकलन का प्रकाशन निश्चित ही एक उपलब्धि है।

●

— नर्मदा प्रसाद गुप्त

पुस्तक– बुन्देली का आधुनिक नाट्य साहित्य, सम्पादक– डा० बलभद्र तिवारी, प्रकाशक– बुन्देली पीठ, सागर विश्वविद्यालय, सागर, म० प्र०, मूल्य– रु० २५.००

'ईसुरी' विशेषांक' पर चर्चा जारी है...

● लोककवि ईसुरी की रचनाओं सहित 'मामुलिया' का अंक मिला। बहुत ही सुन्दर ढंग से उसका सम्पादन आपने किया है। आपको इसके लिए हार्दिक बधाई।

— डा० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद

● आपका पत्र और 'मामुलिया' का ईसुरी अंक मिला। आपने बड़े परिश्रम से सामग्री एकत्र की है। यह अंक ईसुरी पर संदर्भ-ग्रंथ बन गया है। ईसुरी पर इतनी और ऐसी सामग्री देखने में नहीं आई। आपने ईसुरी के सभी पक्षों को समाविष्ट कर लिया है। शोध और समीक्षा की ऐसी मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत करने केलिये मेरी बधाई।

—डा० कान्ति कुमार जैन, सागर विश्वविद्यालय

● बुन्देली संस्कृति, साहित्य, कला, इतिहास के उन्नयन में 'मामुलिया' की भूमिका निस्संदेह मामूली नहीं है। — केशव रावत, खिमलासा (सागर)

● आपने इस अंक को सर्वांग सुन्दर बनाने का जो सफल प्रयास किया है, उसके लिए बधाई। ईसुरी के जन्मांक, उनकी हस्तलिपि के नमूने, दुर्लभ फागों के संकलन, फागों की स्वरलिपि, गोष्ठियों की बहसें तथा लेखादि सभी कुछ ईसुरी और उनके काव्य को प्रामाणिक आधार एवं व्यापक आयाम प्रदान करने में सहायक हैं। इतनी सारी सामग्री एक अंक में जुटाने के लिए पुनः बधाई। —घनश्याम कश्यप, ग्वालियर

● मामुलिया का 'ईसुरी विशेषांक' अच्छा बन पड़ा है। सभी लेख ईसुरी के व्यक्ति- त्व एवं काव्य के विभिन्न पक्षों को उजागर करते हैं। ईसुरी के विविध संकलनों के आ जाने से यह ईसुरी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर ऐतिहासिक दस्तावेज हो गया है। लोककवि की स्मृति में इस अंक का प्रकाशन प्रेरणा की स्रोतस्विनी ही नहीं प्रवाहित करेगा, बल्कि आधुनिक युग की बिषाक्तता को दूर करने में नयी पौध का दिशा–निर्देश भी देगा। आपको अनेक धन्यवाद।

— डा० बलभद्र तिवारी, सागर विश्वविद्यालय

● विशेषांक देखकर हर्ष तथा गौरव की अनुभूति हुई। इस युग में, जबकि इस प्रकार की साहित्यपत्रिकाएं दुर्लभ सी हो रही हैं और यदि सुलभ हैं भी, तो मात्र एक वर्ग विशेष या विचारधाराविशेष का ही प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती हैं, 'मामुलिया' जैसी विशेष पत्रिका को प्रकाशित कर पाना आप ही जैसे कुछ लोगों के वश की बात रह गई है। अतिरंजना न समझें, मामुलिया परिवार को मेरी ओर से हार्दिक बधाई और साधुवाद ग्रहण करें। — महेश कुमार मिश्र 'मधुकर', दतिया

● मामुलिया का लोककवि ईसुरी विशेषांक मिला, जो बहुत पसन्द आया। विद्वानों

के शोधपूर्ण लेख पढ़कर ज्ञानवर्द्धन हुआ। फाग साहित्य के सम्बन्ध में पाठकों को यह बताना चाहता हूं कि जिस प्रकार बुन्देली फाग साहित्य को ईसुरी, गंगाधर व्यास और ख्यालीराम जैसे तीन प्रमुख लोककवियों ने समृद्ध किया है, उसी प्रकार अवधी में रंगपाल जी ने प्रचुर फाग साहित्य की रचना की है। एक तरह से देखा जाय, तो ईसुरी और रंगपाल समकालीन थे। ईसुरी की अधिकांश फागें भक्ति एवं ज्ञान-परक हैं तथा उनमें लोकजीवन के दर्शन होते हैं, जबकि रंगपाल जी की फागें रीतिकालीन प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत एकदम श्रृंगारी हैं। रंगपाल संगीत एवं छंदशास्त्र के आचार्य थे, इसलिए इसका असर उनकी फागों पर पड़ा। उनके लिये रंग, चैती, चौताल, झूमर आदि फागें आज पूर्वांचल में घर-घर गाई जाती हैं। रंग फाग का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

बलम सोये रहो अब ही, दीने गलबाँहि
लगत फोकी ही बीरी, अब तो यहि ठांहि
नीके पान मिलत हैं नाहीं, अति घटि दाम बिकाहिं ॥बलम०॥
कबहुं भ्रम होत भोर को चांदनि निसि माहिं
तुम मिल हिय होत हिमंचल, मुकताहू सियराहिं ॥बलम०॥
शब्द सुनि परत मथानी, सो चढ़ि यहि काहि
धामहि से सोवति है ग्वालिनि, जागहि अर्ध निशाहि ॥बलम०॥
द्वार ढिग सोवति रासी, जब-तब अंगिराहिं
'रंगपाल' चुरियाँ खनकी है, चिरिया बोली नाहिं ॥बलम०॥

— **आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव**, भारतीय स्टेट बैंक, खलीलाबाद, बस्ती, उ० प्र०

● मामुलिया की अंक प्यारा-बारा पढ़ो। पढ़तईं दंग रै गओ और अरनई आप मौ सें निकर परो– 'वारे घुल्ला, का कानें तोरी'। सच्चऊं सबई नें बड़ो नौनो लिखो है। न जाने काए मोखां सबई सें उम्दा श्री घनश्याम कश्यप जू को **'पाठ-निर्धारण'** बारो लेख लगो। मोरी तरफ सें उनखां साबासी और उनसें मोरी बिन्ती है कि जोंन काम उननें करवे खां कहो है, वो काम बे खुदई करें तो बहुतई उम्दा रैहै।

श्री दशरथ जैन जू नें भइया नर्मदा प्रसाद गुप्त जू सें पूछो कि जब बे कचैरी में जाकें 'कोर्ट मैरिज' कर लेहैं, तो तुमाये टीका-भांवरन के गीत (गारीं) कहां जैहैं ? उनको ई उमर में जो हुलास हिम्मत की बात है। बे काये खां घबड़ात हैं, 'कोर्ट मैरिज' के लोक-गीत बनन लगहैं।

प्रो० प्रमोद पाण्डेय जू नें कहो है कि ईसुरी नें **१८५७ की लड़ाई** पै कछू नईं लिखो, अपुन के येई अंक में पन्ना नं० ४७ क्र० ८ में जोन 'जो कोऊ ······ नौन सें होबै।' खां अपुन १८५७ की फाग काये नईं मानत। ईसुरी ने ऊखां सिपाही विद्रोह मानो तो, जबई तो उननें 'चाकर' कहो है फाग में। अब अपुन कहो कि उननें साफ-साफ 'गदर' शब्द काये नईं लिखो, तो हम कहत हैं कि जैसई सुभद्रा कुमारी चौहान नें अपने खां बचाउत भये लिखो तो ऊसई ईसुरी ने करो, तौ का बुरओ करो।

सम्पादक जू, अपुन सें एक बात और कानै है कि ईसुरी और गंगाधर तो अपुन नें सबई के सामने लाकें खड़े कर दये, अकेलें ख्याली, दुर्गा, रसिया, **अवधलाल, मनभावन रघुवर, बोधन, ख्यबचंद** आदि नें का बिगारो है, उनखां सोऊ खड़ो करो। सब कोऊ इन सब खां जानें और जो काम अपुन कर सकत हैं। सबई विद्वानन खां एक-एक लोक-कवि सौंप दओ जाय, बस काम बन जैहै। — **कुं. कृष्ण प्रताप सिंह**, छतरपुर

● जा मामुलिया पढ़ जब डारी तब मन में अनुमानी।
बुन्देली को फिर विकास भओ जा मैंने अब जानी।
ई अनुपम प्रयास की कैसें करों मैं कौन बड़ाई।
बिगड़ी बुन्देली वाणी की ईनें लाज बचाई।
'मक्खन' मन में भओ भरोसो मान गये हम भइया।
रोजई रोज प्रगति जा पावै रखवैं लाज कन्हैया॥

—**राजेश कुमार तिवारी**, सम्पादक मधुवन, पिपरा, पो० वधैरा, जिला झांसी उ० प्र०

लोककवि ईसुरी : एक अतृप्त आत्मा

—डा० वीरेन्द्र कुमार जैन

लोककवि ईसुरी के लिए समर्पित 'मामुलिया' का अंक लोककवि ईसुरी के लिए अपेक्षा से अधिक **सम्मान** देना है। यह उसी प्रकार होगा, जैसे पहिले संस्कृत के महा-कवि माघ का संस्कृत जगत में अधिक सम्मान था, बाद में कम होता गया ! इसीं प्रकार 'ईसुरी' का सम्मान भी घटने की ओर अग्रसर हो सकता है।

मामुलिया के इस अंक में लोक साहित्य की अच्छी मीमांसा सम्पादक डॉ० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने प्रस्तुत की है। उसके पश्चात् पृष्ठ ११७ तक ईसुरी की फागों के विविध पक्षों पर अनेक प्रतिष्ठित लेखकों ने अपने लेखों द्वारा प्रकाश डाला है। ऐसा करने में विषय की **पुनरावृत्ति** भी हुई है, किन्तु साथ ही ईसुरी की भाषा, शिल्प और वर्ण्य-विषय को व्याख्यायित किया गया है। अन्त में पृष्ठ १७४ तक लेख पर्याप्त गंभीर होते गये हैं, और वे ईसुरी के मानस और **मानसिकता** का भी परिचय देते हैं। इनमें ईसुरी की 'मूल फागों का पाठ निर्धारण' 'फगवारे-ईसुरी' 'ईसुरी की काव्य भाषा' 'ईसुरी की कविता : कुछ प्रभाव' शीर्षक लेख बहुत ज्ञानवर्धक और वास्तविकता के निकट हैं।

एक पक्ष जिस पर पत्रिका में कहीं विशेष प्रकाश नहीं पड़ा, दिखता है, वह है- ईसुरी की अतृप्त आत्मा का वर्णित **अयोग श्रृंगार**। इस पक्ष पर जब ध्यान गया तो श्री दंगल सिंह के लेख 'फगवारे ईसुरी' की ओर ध्यान जाना आवश्यक है- वे लिखते हैं

कि ईसुरी ने जहां-जहां, रजऊ शब्द का प्रयोग किया है, वहां किसी रजऊ स्त्री विशेष्य के लिए नहीं है,अपितु बुन्देलखण्ड में हर जगह बिटिया से कहा जाता है। रजऊ, रजोआ और रजौ सब एक ही मायने रखते हैं (पृष्ठ १३७)। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ईसुरी की फागें केवल स्फुट छंद हैं, किसी महिला को लक्ष्य करके नहीं लिखी गई हैं। याकि सामान्य रूप से युवती महिलाओं को लक्ष्य करके लिखी गयी हैं।

तथापि जिस उद्दाम वेग से उनकी फागें लिखी गयीं हैं, उनसे प्रतीत होता है कि काल्पनिक या वास्तविक जो भी हो, उस रजऊ से ईसुरी को संयोग-सुख कभी प्राप्त न हुआ होगा। उनकी कविता अयोग श्रृंगार की झलक मात्र है। नायिका के घर की चौखट बनने की कामना इसी कारण से है। इसी कारण वियोग का प्रश्न ही नहीं है। वह तो निरन्तर नायिका के अंगोपांगों के चित्र बनाने में ही लगा रहता है। वह कालिदास के मेघदूत का ज्ञातास्वाद कवि नहीं है (पूर्वमेघ ४५)। इसी कारण कवि उच्छृङ्खल सा लगता है। उसमें भाव-गंभीरता का अभाव है। कभी-कभी कवि ईसुरी ऐसा लगता है, जैसे कोई असामाजिक तत्व किसी भी लड़की पर अपना प्रेम प्रगट कर रहा हो आज भी यदि कोई ऐसी कविता करता, तो लोग उसे क्षमा न करते। श्री दंगल सिंह के अनुसार वे पिटे भी हों, तो आश्चर्य नहीं है (पृष्ठ १३८)।

इतिहास गवाह है शिव-पार्वती का उद्दाम श्रृंगार चित्रण करने के कारण महाकवि कालिदास को आचार्य आनन्दवर्धन ने आक्षिप्त किया है। खजुराहो की विकृत मूर्तिकला को डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने देश के पतन का प्रतीक बतलाया है। कुछ अपवादों को छोड़कर समूचा रीतिकाल देश के पतन की कहानी है। ईसुरी भी उसी पतन की एक कड़ी भर है। इसका अर्थ यह नहीं है कि लेखक के देश-काल-भाव-क्षेत्र आदि को ध्यान में न रखकर मैं यह लिख रहा हूँ। व्यवहार के साथ ही वह नीति या सिद्धान्त सदा ही सामने होना चाहिये, जो वर्तमान पीढ़ी को पत्रिका देना चाहती है। स्वाभाविक है कि जब महिला वर्ष, युवा-वर्ष मनाये जा रहे हों, स्वामी विवेकानन्द का पुण्य स्मरण हो रहा हो, तब महिलाओं को केवल भोग्या और युवाओं को केवल पथ-भ्रष्ट करने वाली सामग्री प्राप्त नहीं हो, बल्कि देश की ऊर्जा का संरक्षण करके नैतिक धरातल को ऊंचा उठाने वाली सामग्री होना चाहिये।

अंत में इस सर्वांगसुन्दर अंक को प्रकाश में लाने के लिए सम्पादक श्री गुप्त जी एवं अन्य समस्त लेखकवृन्द प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र हैं।

●

— संस्कृत विभाग, महाराजा महाविद्यालय,
छतरपुर (म० प्र०)

लोककवि ईसुरी विशेषांक : एक समीक्षा

● डा० कृष्णमोहन सक्सेना

लोक का इतना बड़ा महाकवि ईसुरी और उसके व्यक्तित्व तथा रचनाधर्मिता पर मात्र यत्र-तत्र बिखरे हुए लेख हैं, समग्र रूप से सुचिंतित सामग्री उपलब्ध नहीं है। यह उपेक्षा क्यों? "मामुलिया" का "लोककवि ईसुरी विशेषांक" प्राप्त होते ही पूरा पढ़ गया और महसूस किया कि ईसुरी विषयक मेरी अनेकानेक जिज्ञासाओं का सहज ही समाधान हो गया। जहां तक मेरी जानकारी है, ईसुरी के सम्बन्ध में सर्वथा पहली बार सुविचारित सामग्री सुनियोजित ढंग से सम्प्रेषित हुई है। वस्तुतः इस विशेषांक ने एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है और ठोस आधार प्रदान किया है।

'मामुलिया' विगत तीन वर्षों से बुन्देलखण्ड के लोकतत्त्वों का जिस निष्ठा के साथ उसके परिपूर्ण परिवेश-परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक ढंग से मूल्यांकन कर रही है, उससे यह आस्था बलवती होती है कि अभिजात्य साहित्य की आत्मा लोकसाहित्य के विभिन्न वैभव पूर्ण आयामों को भविष्य में प्रतिष्ठा मिलेगी।

विशेषांक के प्रथम लेख में डा०नर्मदा प्रसाद गुप्त ने ईसुरी को समझने के आधार-भूत सिद्धान्तों की अनुभवजन्य विवेचना की है। इन आधारों को हृदयंगम करके ही कोई शोधार्थी- अध्येता ईसुरी के साथ न्याय कर पाएगा। उनका यह अभिमत सर्वथा मान्य है कि ईसुरी की फागें लोककाव्य हैं। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने जो भ्रम फैला रखा है, उसका निस्तारण हो जाना चाहिये, ताकि लोककाव्य के प्रतिमानों पर कोई विवाद न रह जाय। किसी लोककाव्य का रचनाकार एक है या कई हैं- यह बात महत्वपूर्ण नहीं है- महत्व तो इस बात में है कि उस गीत-छंद ने लोकमानस को कितना उद्वेलित-प्रेरित किया है। उसके गायन की परम्परा कितनी जीवंत बनी हुई है। ईसुरी के गीत अपार जनसमूह के रोम-रोम में बस गये हैं, अतः ऐसे काव्य को लोककाव्य न कहकर और कुछ कहना उचित नहीं। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि वास्तव में लोककबि ही हैं। उनके साहित्य का संकलन तथा पाठ-निर्धारण करके उसे आभिजात्य साहित्य में स्थान मिला। यह साहित्य के इतिहास के अध्ययन में आ गया और विद्यालय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हुआ। यदि इसी प्रकार डा० गुप्त के निर्देशानुसार ईसुरी के साहित्य का पाठ-निर्धारण हो जाए, तो भविष्य में ईसुरी भी विश्व-विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थान पा जाएंगे। कुछ कवि पाठ्यक्रम में स्थान पा जाएं, तो इससे जिनको स्थान नहीं मिला, उनका महत्व कम नहीं होता। यह बात विवादास्पद है कि आभिजात्य साहित्य का आधार लोक साहित्य है— शास्त्रीय संगीत का आधार लोकसंगीत है। कुछ गीत केवल लोकगीत की सीमा में ही रह जाते हैं, कुछ गीत लोकगीत तथा आभिजात्य साहित्य के बीच एक सेतु होते हैं अर्थात् वे नगर-गांव

सभी के बीच लोकप्रिय हो जाते हैं और जीवन संस्कार के अंग बन जाते हैं। कबीर-तुलसी की परम्परा में ईसुरी ऐसेही कवि हैं। डा० गुप्त ने इस लेख में ईसुरी के लोकज्ञान तथा गाँव के आम आदमी का प्रतिनिधित्व करने वाला एक भावुक व्यक्तित्व प्रमाणित किया है। ईसुरी की सबसे बड़ी खासियत यह रही है कि वे कवि के साथ गायक भी थे, अतः लोकधुनों की परम्परा में उन्होंने जो प्रयोग किया उससे उनके मनोगत भाव सहज सम्प्रेषित हो गये थे। लोकसाहित्य की चर्चा चलने पर आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता का सवाल खड़ा कर दिया जाता है।

यह बात साफ है कि साहित्य एक स्वस्थ 'मानस' का निर्माण करता है- मानवीय आंतरिक प्रवृत्तियों को अर्थवत्ता प्रदान करता है- इतनी परिपूर्ति हो जाने से व्यक्ति किसी भी वाह्य संघर्ष से मुकाबला कर सकने में समर्थ हो सकता है। साहित्य की यह शक्ति आदमी को आदमी बनाने की है कि यह जीवन क्षणभंगुर है, अतः जितना परहित कर सकते हो- करो, दूसरों को सताओ नहीं, आदि-आदि। ईसुरी इसीलिए पूरी तरह से आज भी प्रासंगिक हैं। ईसुरी ने युद्ध का चित्रण नहीं किया, बस इसलिए वे प्रासांगिक नहीं हैं- यह कहना बेमानी है। उनकी सामाजिक चेतना ही वस्तुतः राष्ट्रीय चेतना है- जगनिक ने जो वाह्य जगत में काम किया, ईसुरी ने वही अंतर्जगत में किया है।

दूसरे लेख में माने-जाने प्रगतिशील कवि- द्वय केदारनाथ अग्रवाल तथा गोविन्द मिश्र ने ईसुरी के जीवन और साहित्य के एकीकृत स्वरूप को उभारा है। ईसुरी वास्तव में कवयित्री मीराबाई के समकक्ष हैं। इन कवियों की मनः -स्थितियां अंतर्मुखी होते हुये भी बहिर्मुखी हैं, क्योंकि उनकी अभिव्यक्ति-क्षमता इतनी प्राणवान है कि एक पंक्ति के उच्चारण के साथ ही श्रोता का साधारणीकरण हो जाता है।

तीसरे लेख में डा० नाथूराम चौरसिया ने ईसुरी की जन्मपत्री के साथ उनके जन्म बाल-जीवन, परिवार, व्यक्तिगत जीवन, उनके आंतरिक गुण स्वाभिमान, गांव की माटी से प्रेम, मानवीय दृष्टि, विनम्रता, ईश्वर-आस्था, भावुकता आदि का विवरण प्रस्तुत करते हुये उनके व्यक्तित्व को अद्वितीय बताया है। इस खोजपूर्ण लेख से ईसुरी का प्रामाणिक व्यक्तित्व उजागर हुआ है।

चौथे लेख में डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने ईसुरी की काव्य-प्रेरणा और रचना-प्रक्रिया पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उन्होंने भ्रामक धारणाओं का विश्लेषण करते हुए ईसुरी के प्रेमतत्व का विवेचन किया है कि उनकी अनुभूति देह और मन को पार करके आत्मा से जुड़ जाती है। उनकी प्रेमिका 'रजउ' वास्तव में लोकनायिका थी। फागों की रचना-प्रक्रिया में संवाद की स्थिति के कारण ही सहज बोधगम्यता है और वे बेजोड़ हो गयी हैं।

पांचवे लेख में विद्वान-लेखक डा० रमाशंकर द्विवेदी ने ईसुरी की फागों में रूप-सौंदर्य का सारगर्भित और छठे लेख में डा० वीरेन्द्र निर्झर ने प्रेमतत्व का गंभीर मूल्यां-

कन किया है। सातवें लेख में मान-जाने समीक्षक डा० बलभद्र तिवारी ने ईसुरी की फागों में भावसौष्ठव का और मर्मज्ञ विद्वान श्रीनिवास शुक्ल ने आठवें लेख में ईसुरी की लोकोन्मुखता का विवेचन करते हुये उनकी फागों में विविध लोकरंगों का प्रभावी आकलन किया है। नवें में डा० हरिसिंह घोष ने भारतीय दर्शन एवं अध्यात्म की दृष्टि से और दसवें में श्रीमती प्रमोद पाठक ने सांस्कृतिक दृष्टि से ईसुरी की फागों का विवेचन किया है। श्री घनश्याम कश्यप ने ईसुरी की फागों की पाठ- समस्या पर मूल्यवान विचारणा प्रस्तुत करते हुवे उनकी भाषा के स्वरूप तथा फाग के कलेवर पर प्रकाश डाला है, तो डा० श्यामसुन्दर 'बादल' ने चौकड़िया फाग में छंद योजना का उद्धरण सहित विवेचन किया है। बुन्देलखण्ड के इतिहास तथा फड़बाजी परम्परा के जानकार डा० गनेशी लाल बुधौलिया ने फागों की फड़बाजी के इतिहास-बोध के परिप्रेक्ष्य में ईसुरी का अनूठा योगदान प्रमाणित किया है। श्री दंगल सिंह ने बुन्देली बोली में ही अपने विचार व्यक्त करके ईसुरी के फगवारे स्वरूप का चित्रण किया है। पन्द्रहवें लेख में डा० वीरेन्द्र निर्झर ने ईसुरी की काव्य-भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। ईसुरी की फागें, गायकी की दृष्टि से (श्री महेन्द्र कुमार मिश्र 'मधुकर') तथा 'महोबा की फाग गायकी' में स्वरलिपि प्रस्तुत करके आज के संगीतज्ञों को ईसुरी की फागगायकी का प्रामाणिक आधार प्रदान किया है।

अठारहवें लेख में डा० राधाबल्लभ शर्मा ने कविद्वय ईसुरी तथा गंगाधर के काव्य-वैशिष्ट्य का तुलनात्मक विवेचन किया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि ईसुरी के समकालीन तथा परवर्ती कवियों ने फागों के क्षेत्र में ईसुरी की विलक्षण प्रतिभा को स्वीकार किया है। उन्नीसवें लेख "ईसुरी की कविता : कुछ प्रभाव" के अन्तर्गत डा० कमला प्रसाद ने इस कवि की मौलिकता तथा सामाजिक प्रतिवद्धता के आयामों को उद्घाटित किया है।

अंत में स्व० कुंवर दुर्ग सिंह, श्री इलाशंकर गुहा, डा० श्याम सुन्दर बादल द्वारा संगृहीत अप्रकाशित और दुर्लभ फागों के प्रकाशन से यह स्पष्ट होता है कि ईसुरी के सम्पूर्ण प्रकाशित-अप्रकाशित साहित्य का एक स्थान पर संग्रह पाठ-संपादन तथा एक प्रामाणिक ग्रन्थ का प्रकाशन निहायत जरूरी है। यह कार्य श्रम तथा व्ययसाध्य है। बुन्देलखण्ड के विद्वानों को इस कार्य के लिए भारत-सरकार, प्रदेश सरकार या किसी संस्था से फेलोशिप मिले और बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं को प्रकाशनार्थ समुचित अनुदान मिले, तभी यह कार्य निर्धारित अवधि में पूर्णता प्रदान कर पाएगा।

अपनी सीमाओं के बावजूद " मामुलिया " पत्रिका ने ईसुरी पर जो सामग्री प्रकाशित की है, उससे उस महाकवि के प्रति देश-विदेश के विद्वानों तथा संस्थाओं

का ध्यानाकर्षण होगा ऐसा मेरा विश्वास है ।

विशेषांक के प्रारम्भ में मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के रजत जयन्ती वर्ष तथा बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी की तृतीय वर्षगांठ के उपलक्ष्य में आयोजित बुन्देली संवाद में "लोक साहित्य कितना नया, कितना पुराना" विषय पर हुई सार्थक बहस की रपट प्रकाशित की गयी है । इससे लोक–साहित्य के प्रति विद्वानों के बहुमूल्य विचारों को अभिव्यक्ति मिली है, जिससे इस दशा में निरन्तर सोच–समझ की एक शक्ति मिलती है ।

कुल मिलाकर इस विशेषांक की उपयोगिता निर्विवाद है । इसके लिए बुन्देलखंड साहित्य अकादमी के पदाधिकारी तथा 'मामुलिया' के सम्पादक–मण्डल के सदस्य बधाई के पात्र हैं ।

•

— सम्पादक "नौटंकी कला" त्रैमासिक
४१, लक्ष्मणगंज; लखनऊ

रपट– १

तुलसी शेक्सपियर से बहुत आगे

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर की एक वार्षिक आयोजना– तुलसी जयन्ती पर साहित्यकारों का अभिनन्दनोत्सव । श्रीलक्ष्मणदास कुंजबिहारी सराफ धर्मशाला न्यास के सहयोग से दो चरणों में सम्पन्न । अभिनन्दित सुकवि थे– सर्वश्री मादक जी चित्रकूट, गोवर्धन त्रिपाठी बांदा, रवीन्द्र शर्मा जालौन, ओमप्रकाश सक्सेना 'प्रकाश' झांसी और गोविन्द यदुवंशी पन्ना । अभिनन्दन करते हुये समारोह के अध्यक्ष तुलसी–साहित्य के मर्मज्ञ श्री महेन्द्र प्रताप सिंह ने कहा कि वर्तमान विषम परिस्थितियों में कवि और साहित्यकारों को निराशा के नहीं, प्रेरणा के स्वर देना चाहिये । तदुपरांत काव्य–गोष्ठी प्रारम्भ हुई नगर के वयोवृद्ध कवि श्री रामनाथ गुप्त 'हरिदेव' के वाणी–वन्दना की दो सरस घनाक्षरियों से । खास बात यह थी कि हरिदेव ने 'हम तो बुन्देलखण्ड विरद बखानो तौऊ सब कोऊ कहै गौरी–सुवन गनेस कौ' कहकर बुन्देलखण्ड का गरिमामय लघु चित्र ही अंकित कर दिया ।

सम्मानित कवियों में एक छोर पर थे लगभग अस्सी वर्षीय मादक जी, जिन्होंने अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से एक सशक्त और प्रभावी गीत पढ़कर सबको चौंका दिया । त्रिपाठी की कथात्मक कविताएं मैदानी नदी के प्रवाह से गतिशील रहीं, जबकि मादक जी में गजब का ओज और पहाड़ी झरने की रवानी थी । रवीन्द्र शर्मा ने अनेक गीतों और गजलों से श्रोताओं को सम्मोहित कर दिया था, क्योंकि उनमें जहां कथ्य की सूक्ष्मता और गहराई थी, वहां नये प्रयोगों की कुशलता । वर्तमान जीवन की कचोट और टीस से भरीं उनकी इन पंक्तियों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं होता

> रात बांधे पीठ पर दिन हथेली पर धरे
> आम सड़कों पर सवेरे जा रहे गुजरे ।
> राजपथ पर मिल रही हैं भूख की लम्बी कतारें ।
> पापवाले घट स्वयं ही मंत्र वेदों के उचारें । ...

सचमुच शर्मा जी के गीतों में उत्तरोत्तर ऊंचाई के आयाम उभर रहे हैं, जबकि बुन्देली फागों में ईसुरी जैसी रसवत्ता लाने वाले 'प्रकाश' सक्सेना एक पठार पर स्थित–प्रज्ञ हो गए हैं । आज भी 'ईसुर फागें बोलत जा रये, मोसें तो लिखवा रये' कहकर अपनी फागों की सार्थकता पुष्ट करते हुए उन्होंने श्रृंगार और अध्यात्म की कई फागें सुनाकर गोष्ठी को नया मोड़ दे दिया । बुन्देली भाषा की मिठास में घुली रसिकता पूरे प्रांगण में बगर गई, जिसे और बढ़ाया गोविन्द यदुवंशी ने । लेकिन लम्बे गीत में फाग जैसे मुक्तक की वह व्यंजना कैसे अमा सकती थी । इस क्रम में महाराजपुर के गीतकार

रमेश चौरसिया का 'चुनरिया' वाला गीत भी उल्लेख्य था। महोबा के डा० वीरेन्द्र 'निर्झर' की कविता 'ताजमहल' ओजस्विनी होने के कारण ही प्रभावी नहीं थी, वरन् आधुनिक वैचारिकता की ऐतिहासिक अनुगूंज उसे मार्मिक बनाने में सफल रही।

आगत कवियों के साथ-साथ स्थानीय कवियों– सर्वश्री भैयालाल व्यास, श्रीनिवास शुक्ल, आदित्य ओम, रामकृपाल चौरसिया, सुलेमान, जगदीश खरे, सुरेन्द्र शर्मा, संतोष सिंह बुन्देला, नवलकिशोर 'मायूस' सईद बख्श खैयाम, हशमत, सरदार जोगिन्दर सिंह, कु.कमला कछवाहा, बाबू जी खरे, अजय 'उर्मिल', रत्नेश, ललितेश, आदित्य शर्मा आदि का योग विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह सही है कि स्थानीय कवियों में कुछ पुराने और नये ऐसे हस्ताक्षर हैं, जो किसी भी काव्य-मंच पर काफी ऊंचे आसन पर बैठते हैं, लेकिन यह भी सही है कि कवियों की एक अच्छी खासी उपस्थिति मंच तक को डांवाडोल कर देती है। ऐसी विषम स्थिति का सामना करना पड़ा गोष्ठी के संचालक श्रीनिवास शुक्ल को। फिर भी महाकवि तुलसी को यह काव्य-श्रद्धांजलि सार्थक रही, यह निर्विवाद है।

दूसरा चरण : विचार–गोष्ठी

दूसरे दिन प्रातः गोष्ठी की अध्यक्षता भूतपूर्व आयुक्त श्री रामविहारी 'लाल' ने की और संचालन किया श्रीनिवास शुक्ल ने। सबसे पहले मादक जी ने तुलसी की मानस पर अपने विचार व्यक्त किये, जिनकी केन्द्रीय दृष्टि आध्यात्मिक थी। डा० गंगा प्रसाद गुप्त ने संक्षेप में कहा कि तुलसी के युग में जो विश्वास थे, आज के बहुप्रचारित लोकतंत्र में नहीं हैं। मुख्य वक्ता के रूप में चित्रकूट विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष महेन्द्र प्रताप सिंह ने तुलसी और शेक्सपियर की समानताओं को आधार बनाकर दोनों के साहित्य को तौलने का एक अच्छा प्रयत्न किया। यद्यपि ये वस्तुगत आधार प्रच्छन्न थे, तथापि उनसे एक तुलनात्मक चित्र खड़ा करने में वे सफल रहे। एक तरफ मानस की और दूसरी तरफ शेक्सपियर की काव्य–पंक्तियां उद्धृत करने से एक समानान्तर वैषम्य भी साफ–साफ नजर आया।

इस तुलनात्मक अनुशीलन के निष्कर्ष में श्री सिंह का मत था कि तुलसी शेक्सपियर से बहुत आगे हैं। तुलसी का ही मन्त्र लेकर महात्मा गांधी और डा० राजेन्द्र प्रसाद श्रद्धा–विश्वास की साकार मूर्ति बन सके। अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में श्री लाल जी ने चित्रकूट की नित नवीन हो रही प्रगति पर प्रकाश डालते हुए श्री महेन्द्र प्रताप सिंह जी के अमूल्य योगदान की चर्चा की और सुझाव दिया कि चित्रकूट पर उसी प्रकार के शोध-प्रबंध लिखे जाने की आवश्यकता है, जैसा जगन्नाथ पुरी पर किया जा चुका है। यह कार्य बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी को अपने हाथ में लेना चाहिये। अकादमी के अध्यक्ष डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने आभार व्यक्त करते हुए अकादमी के संकल्पों और कार्यपद्धतियों की संक्षिप्त रेखाएं प्रस्तुत कीं और आश्वासन दिया कि चित्रकूट पर शोधकार्य किया जायेगा। भूतपूर्व आयुक्त श्री कन्हैया लाल अग्रवाल ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

●

प्रस्तुति- वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

रपट– २

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जन्मशताब्दी पर समीक्षा–गोष्ठी

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी के तत्वाधान में २ सित०, ८४ को अग्रवाल धर्मशाला सभाकक्ष में प्रसिद्ध समीक्षक, इतिहासकार और निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में एक समीक्षा–गोष्ठी सम्पन्न। संचालन करते हुये डा० गंगाप्रसाद गुप्त ने आचार्य शुक्ल के जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला। चूंकि शुक्ल जी की जीवन–कथा बहुत प्रचारित नहीं है, इसलिए श्रोताओं ने बड़ी उत्सुकता से सब कुछ सुना। वस्तुतः गोष्ठी की शुरुआत हुई डा० राधावल्लभ शर्मा के वक्तव्य और आलेख से। उनका विषय था– 'शुक्ल जी के समीक्षा सिद्धांत', और उन्होंने साधारणीकरण तथा तुलसी, सूर आदि की व्यावहारिक समीक्षाओं के उदाहरण देते हुये सिद्ध किया कि शुक्ल जी ने हिन्दी समीक्षा को स्थायी धरातल दिया। वे आलोचना के आधार स्तम्भ और मील के पत्थर हैं। डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने हिन्दी के साहित्येतिहास में आज तक के अनुसंधानों का उल्लेख करते हुये शुक्ल जी के इतिहास को कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण बताया। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि यह शताब्दी वर्ष शुक्ल जी के प्रदेय के पुनर्मूल्यांकन का है। कुछ आरोपों को स्पष्ट करते हुये उन्होंने शुक्ल जी के सम्बन्ध में जमी गलतफहमियों को हटाने का उपक्रम किया। श्री अजय कुमार 'उर्मिल' के आलेख–पाठ के बाद श्री स्वामी प्रसाद मिश्र ने शुक्ल जी को एक साहित्यिक योगी निरूपित किया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री श्रीनिवास शुक्ल ने पूर्ववक्ताओं के मतों का उदाहरण देते हुये प्रतिपादित किया कि काव्य के क्षेत्र में जो स्थान तुलसी का है, उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द का है, समीक्षा के क्षेत्र में वही स्थान शुक्ल जी का है। अन्त में अकादमी के अध्यक्ष डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने विद्वानों और श्रोताओं के प्रति आभार व्यक्त किया और शुक्ल जी की तरह गम्भीर शोधों के लिए विद्वानों को आह्वान दिया।

●

प्रस्तुति— वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

वैद्यनाथ प्रकाशन की अन्य उपयोगी पुस्तकें —

- आयुर्वेद सार संग्रह
- आयुर्वेद पदार्थ विज्ञान
- किशोर रक्षा और ब्रह्मचर्य
- नेत्र चिकित्सा
- मानस रोग विज्ञान
- यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश
- वैद्य सहचर

पचमढ़ी

पुष्पों और प्रपातों का पर्वतीय बसेरा

- भयंकर भीड़ से कहीं दूर.... .... शांति और नीरवता की ओर

- जहाँ प्रकृति आज भी निर्मल और पवित्र है।

- अलौकिक सौन्दर्य ... . सुहानी धूप और वन-पुष्पों की सुरभि से महकती हवा।

- शैल-शिखरों के बीच दिव्य जलप्रपातों का अद्वितीय सिलसिला।

- पचमढ़ी के चौंसठ दर्शनीय स्थलों-गुफाओं, मंदिरों, पर्वत-शिखरों, जल प्रपातों, तरण पुष्करों और छाँह-भरे आरामगाहों की सैर करें, या रंगारंग मैदानों, घाटियों और कन्दराओं में घूम फिरकर स्वास्थ्य लाभ करें या फिर सिर्फ कुछ न करें.... और वह भी पचमढ़ी के अब तक अनजाने सुन्दर पर्वत शिखर पर।

सू० प्र० सं०/८८००१६०/८५

मध्य प्रदेश में कृषि विकास

- मध्य प्रदेश में अनाज उत्पादन के मामले में उल्लेखनीय बढ़त। छठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष के लिए निर्धारित एक सौ इकतालिस लाख टन अनाज के उत्पादन का लक्ष्य पूर्ण। सातवीं योजना के अन्तिम वर्ष में इसे बढ़ा कर एक सौ नब्बे लाख टन तक पहुंचाने का लक्ष्य।

- सोयाबीन की खेती के वर्तमान नौ लाख हेक्टेयर रकबे को सातवीं योजना के अंतिम वर्ष तक बढ़ाकर अठारह लाख हेक्टेयर करने और पैदावार पन्द्रह लाख टन प्राप्त करने का कार्यक्रम।

- भारत शासन द्वारा घोषित फसल बीमा योजना के अनुरूप प्रदेश में इसके विस्तार की योजना।

- किसानों की पैदावार के भंडारण के लिए एक हजार आठ सौ सत्तर गोदाम बनाने की एक विशाल योजना।

- हरिजनों, आदिवासियों और दो हैक्टेयर तक के खातेदार छोटे किसानों के लिए सिंचाई कुआं बीमा योजना शुरू करने का निश्चय। इस योजना के तहत ऐसे किसानों को लागत वापस मिलेगी जिनके कुएं असफल हो जाते हैं।

- सिंचाई क्षमता में वृद्धि के लिए आगामी पांच वर्षों में नौ बहुउद्देशीय परियोजनाएं, सत्रह बड़ी योजनाएं, चवालीस मध्यम योजनाएं और एक हजार छै सौ छिहत्तर छोटी सिंचाई योजनाओं पर काम करने का निर्णय। अगले पांच वर्षों में प्रदेश की सिंचाई क्षमता में सात लाख तीस हजार हेक्टेयर की वृद्धि का लक्ष्य।

निष्पक्ष और जनोन्मुखी प्रशासन की सार्थक पहल

सू० प्र० सं०/८८००१९०/८५

❋ मामुलिया ❋

मध्यप्रदेश शासन द्वारा विभागों के लिए स्वीकृत

- पंचायत एवं समाज सेवा संचालनालय, म० प्र० के ज्ञापन क्र० / स० शि० / अ / 3 / 81-82 / 1022, भोपाल दिनांक 5-3-82 द्वारा म० प्र० की समस्त ग्राम पंचायतों एवं जनपद पंचायतों के लिए स्वीकृत।

- महाविद्यालयीन शिक्षा संचालनालय, म० प्र० के सहायक संचालक के आदेश क्रमांक 1784 / 1111 / म शि सं / स्था० भोपाल दिनांक 3-6-82 द्वारा मध्यप्रदेश के समस्त महाविद्यालयों के पुस्तकालयों के लिये अनुशंसित।

- लोक शिक्षण संचालनालय, म० प्र० के आदेश क्र० ग्रन्थालय / म / 82 / 328, भोपाल दिनांक 15-7-82 द्वारा म० प्र० की समस्त शिक्षण संस्थाओं — माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शालाओं के वाचनालयों / पुस्तकालयों तथा बच्चों को पारिश्रमिक स्वरूप देने के लिए एवं विभिन्न क्षेत्रीय तथा जिला - पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

म्पर्क :
न्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर, म० प्र०

अकादमी के अधिकृत प्रकाशन

● बुन्देली फागकाव्य : एक मूल्यांकन

सं० डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, डा० वीरेन्द्र निर्झर, मूल्य पच्चीस रुपये

— इस ग्रंथ में चौदह शोधलेख हैं, जो बुन्देली फाग–साहित्य के विविध पक्षों को उजागर करते हैं। फागों के विभिन्न स्वरूपों पर प्रकाश डाला गया है और नयी फागों के विशिष्ट पक्षों को स्पष्ट किया गया है। एक और विशेषता इस ग्रंथ की है कि इसमें दो फागों को स्वरलिपि में बद्ध किया गया है, जिससे फाग-गायन की परम्परा और प्रक्रिया को समझा जा सके। — डा० भगीरथ मिश्र

● आल्हखण्ड : शोध और समीक्षा

सं० डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, डा० वीरेन्द्र निर्झर, मूल्य चालीस रुपये

— ऐसे विशिष्ट लेख जिनसे आल्हखण्ड के राष्ट्रीय तथा नैतिक मूल्यों का उद्घाटन होता है, उनका स्वतंत्र संग्रह न केवल देश के विशिष्टकालीन इतिहास पर प्रकाश डालेगा, वरन् साहित्य में उसके असंदिग्ध महत्व को भी प्रतिपादित करेगा।

— डा० रामकुमार वर्मा

● लोककवि ईसुरी और उनका साहित्य

सं० डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, मूल्य चालीस रुपये

— लगभग बीस निबंधों में ईसुरी की फागों के पाठ–निर्धारण से लेकर उनकी गायकी तक फागों की वस्तु, भाव-सौंदर्य, संस्कृति, दर्शन और कला–कौशल को कई दृष्टियों से परखा गया है और लोककवि ईसुरी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर इतनी सामग्री एवं सर्वांगपूर्ण अध्ययन हिन्दी में पहली बार आया है। — कलावार्ता, भोपाल

● बुन्देली का फाग–साहित्य

डा० श्याम सुन्दर बादल, मूल्य पचास रुपये

— श्यामसुन्दर जी की यह रचना फागों का संग्रह ही नहीं, उसमें ऐसे विद्वत्तापूर्ण निबंध हैं, जो लोकसाहित्य, विशेषतः बुन्देलखण्डी साहित्य पर कई दृष्टियों से प्रकाश डालते हैं और उसको समझने में सहायता देते हैं।— डा० सम्पूर्णानन्द

● बुन्देलखण्ड–बावनी

कविवर रामनाथ गुप्त 'हरिदेव', मूल्य पांच रुपये

— यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि हरिदेव जी में काव्य की उत्कृष्ट प्रतिभा है। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है तथा शैली में प्रवहशीलता।

— डा० रामकुमार वर्मा

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर, म० प्र०